ॐ

श्री वीतरागाय नमः

पण्डितप्रवर श्री राजमलजी विरचित

श्री जम्बूस्वामी चरित्र

संस्कृत पद्य से हिन्दी अनुवाद :

ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी

सम्पादन :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रकाशकीय

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्माओं की दिव्यवाणी का प्रवाह चार अनुयोगों—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के रूप में निबद्ध है। हमारे वीतरागी सन्तों और ज्ञानी-धर्मात्माओं की निष्कारण करुणा से प्रसूत दिव्यध्वनि के साररूप जिनवाणी हमें उपलब्ध है, यह हमारा अहो भाग्य है।

चार अनुयोगों में से प्रथमानुयोग हमारे पुराण पुरुषों की आत्मसाधना का परिचय प्रदान कर हमें बोधि समाधि की पावन प्रेरणा देता है। संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए भव्य जीवों को स्वभाव सन्मुखता की प्रेरणा ही इसका एकमात्र प्रयोजन है।

पण्डित प्रवर श्री राजमलजी द्वारा रचित यह जम्बूस्वमी चरित्र एक ऐसे धीर-वीर महापुरुष की यशोगाथा है, जिन्होंने भोगों को तिलांजलि देकर योगमार्ग का एक ऐसा अनूठा उदाहरण इस जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिसकी सामान्य जन कल्पना भी नहीं कर सकता। माता-पिता के आग्रहवश सर्वांग सुन्दर चार कन्याओं से विवाह एवं विवाह की रात्रि में धर्मचर्चा से उन चारों कन्याओं के हृदय में विषयानुराग के स्थान पर धर्मानुराग का परिवर्तन तथा चोरी के अभिप्राय से घर में प्रवेश किये हुए चोर ने भी इन वैरागी धर्मात्मा की धर्म चर्चा से प्रभावित होकर चोरी जैसे पापकर्म का त्याग करके जिनदीक्षा अंगीकार की। जो पर्याय की क्रमबद्धता एवं तत्समय की योग्यता जैसे कल्याणकारी सिद्धान्तों का बोध प्रदान कर, पर्यायदृष्टि से जीव को विमुख करते हुए ध्रुव चैतन्य की मंगलमय आराधना की पावन प्रेरणा प्रदान करता है।

हमारे जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्भक्तरत्न

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को महा पुरुषों के प्रति सहज ही अहोभाव उमड़ता था, जिसके प्रत्यक्ष दर्शन उनके प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा में होते हैं। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर यह प्रस्तुत ग्रन्थ 'जम्बूस्वामी चरित्र' लोकार्पित किया जा रहा है।

तदर्थ हम ग्रन्थकार पण्डित राजमलजी एवं पूज्य गुरुदेवश्री तथा बहिनश्री के प्रति अपना हार्दिक बहुमान हर्षपूर्वक व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल प्रकाशन दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत द्वारा बहुत वर्षों पूर्व किया गया था, जिसका हिन्दी रूपान्तरण ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी द्वारा किया गया था, जो अभी अनुपलब्ध है। इसी कारण यह संस्करण आवश्यक सम्पादन एवं भाषा शुद्धि के साथ उपलब्ध कराया जा रहा है। इस कार्य को पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन (बिजौलियां-राजस्थान) ने साकार किया है।

सभी साधर्मीजन इस चरित्र ग्रन्थ का स्वाध्याय कर निज-हित साधन करें - यही भावना है।

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

विषय-सूची

पहला अध्याय—महाराज श्रेणिक वीर के समवसरण में	2
दूसरा अध्याय—श्री जम्बूस्वामी पूर्वभव-भावदेव भवदेव स्वर्गगमन	31
तीसरा अध्याय—जम्बूस्वामी पूर्वभव-भावदेव भवदेव छठे स्वर्गगमन	59
चौथा अध्याय—जम्बूस्वामी का जन्म व बालक्रीड़ा	76
पाँचवाँ अध्याय—जम्बूकुमार की बसन्तक्रीड़ा व हाथी को वश करना	90
छठवाँ अध्याय—जम्बूस्वामी की जय पताका	97
सातवाँ अध्याय—जम्बूस्वामी व श्रेणिक महाराज का राजगृह में प्रवेश	116
आठवाँ अध्याय—जम्बूस्वामी विवाहोत्सव	128
नौवाँ अध्याय—जम्बूकुमार का चारों स्त्रियों से वार्तालाप व विद्युच्चर का समागम	138
दसवाँ अध्याय—जम्बूस्वामी-विद्युच्चर वार्तालाप	156
ग्यारहवाँ अध्याय—श्री जम्बूस्वामी का निर्वाण	168
बारहवाँ अध्याय—विद्युच्चर मुनि को सर्वार्थसिद्धि	183

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

पण्डितप्रवर श्री राजमलजी विरचित

श्रीजम्बूस्वामीचरित्र

मंगलाचरण

वन्दहु श्री ऋषभेष को, अन्तिम श्री अति वीर।
सिद्ध गुरु पाठक यती, पंच परम गुरु धीर ॥1 ॥

जिनवाणी भव तारणी, शान्त भाव दातार।
सुमरूं हर्ष उपाय के, बुद्धि लहूं विस्तार ॥2 ॥

राजमल्ल पण्डित बडे, परमागम सु प्रवीण।
जम्बूस्वामी चरित्र को, संस्कृत में लिख दीन ॥3 ॥

बालबोध भाषा लिखूं, भवि जीव हित-हेतु।
पढ़ो पढ़ाओ सन्त जन, मोक्ष-मार्ग के हेतु ॥4 ॥

पहला अध्याय

महाराज श्रेणिक वीर के समवसरण में

मैं पण्डित राजमल्ल धर्मतीर्थ के प्रवर्तन करनेवाले श्री आदिनाथ भगवान को और सर्व कर्मों को जीतनेवाले व जगत के गुरु श्री अजितनाथ को नमस्कार करता हूँ।

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप और समुद्र एक-दूसरे को वेढ़े हुए हैं। उन सबके मध्य में जम्बूद्वीप है, जो एक सम्राट के समान शोभायमान है। उसके मध्य में सुवर्णमयी सुदर्शन मेरु है। वह माने जम्बूद्वीप राजा के ऊपर छत्र ही कर रहा है। इसमें महागंगा व महासिंधु नदी बहती हुई मानों जम्बूद्वीप राजा के चमर कर रही हैं।

इस जम्बूद्वीप के दक्षिणभाग में अर्द्ध चन्द्राकार भरतक्षेत्र है। इसके मध्य में विजयार्द्ध पर्वत है। उत्तर हिमवान् पर्वत से महागंगा व महासिंधु नदी निकलकर विजयार्द्ध की दोनों गुफाओं के भीतर से होकर कुछ दूर बहकर क्रम से पूर्व व पश्चिम व लवण समुद्र में गिरी हैं। इस कारण से भरतक्षेत्र के छह खण्ड हो गये हैं। दक्षिण मध्य के खण्ड को आर्यखण्ड व शेष पाँच खण्डों को म्लेच्छ खण्ड कहते हैं।

छह काल परिवर्तन

भरतक्षेत्र में (भरत के आर्यखण्ड में) घटीयन्त्र के समान उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी काल क्रम से फिरा करता है। हर एक के छह-छह काल होते हैं। अवसर्पिणी के छह काल इस प्रकार हैं:-

(1) प्रथम - सुखमा सुखमा, (2) दूसरा - सुखमा, (3) तीसरा - सुखमा-दुखमा, (4) चौथा - दुखमा सुखमा, (5) पाँचवाँ - दुखमा, (6) छठा - दुखमा दुखमा। उत्सर्पिणी के इसी का उल्टा क्रम जानना चाहिए - पहला-दुखमा दुखमा, दूसरा - दुखमा, तीसरा - दुखमा-सुखमा, चौथा - सुखमा दुखमा, पाँचवाँ - सुखमा, छठा - सुखमासुखमा। अवसर्पिणी में आयु काय की ऊँचाई व सुख आदि प्राणियों में घटते जाते हैं, तथा उत्सर्पिणी में क्रम से बढ़ते जाते हैं।

जैसे - एक मास में शुक्ल पक्ष के पीछे कृष्ण पक्ष व कृष्ण पक्ष के पीछे शुक्ल पक्ष आता है, इसी तरह ये दोनों काल क्रम से वर्तते हैं। अब यहाँ भारत में अवसर्पिणीकाल चल रहा है। वहाँ जब पहला काल आर्यखण्ड में था, तब उसकी स्थिति चार कोड़ाकोड़ी सागर की थी।

भोगभूमि की शोभा

इस पहले सुखमा-सुखमा काल में देवकुरु व उत्तरकुरु उत्तम भोगभूमि के समान अवस्था थी, तब जो युगलिये मनुष्य उत्पन्न होते थे, उनकी आयु तीन पल्य की होती थी व शरीर की ऊँचाई ६००० (छह हजार) धनुष की होती थी। शरीर का संहनन वज्रवृषभ नाराच होता था। अर्थात् वज्र के समान दृढ़ नसें, हड्डियों के बन्धन, व हड्डियाँ होती थीं। सबका स्वरूप सुन्दर व शान्त होता था। उनका शरीर तपाये सुवर्ण के समान चमकता था। मुकुट, कुंडल, हार, भुजबंद, कड़े, कर्धनी तथा ब्रह्मसूत्र, ये उनके नित्य पहराव के आभूषण थे। इस उत्तम भोगभूमि के पुरुष पूर्व पुण्य के उदय से रूप, लावण्य व सम्पदा से विभूषित होकर

अपनी स्त्रियों के साथ उसी तरह क्रीड़ा करते थे, जिस तरह स्वर्ग में देव देवियों के साथ रमण करते हैं। भोगभूमिवासी बड़े बलवान, बड़े धैर्यवान, बड़े तेजस्वी, बड़े प्रभावशाली, महान् पुण्यवान होते हैं। उनके कन्धे बड़े ऊँचे होते हैं। उनको भोजन की इच्छा तीन दिन पीछे होती है। तब वे बेर फल के समान अमृतमयी अन्न खाकर ही तृप्त हो जाते हैं। सर्व ही भोगभूमिवासी रोगरहित, मलमूत्र नीहाररहित, बाधारहित व खेदरहित होते हैं। उनके शरीर में पसीना नहीं होता है, व उनको कोई आजीविका करनी नहीं पड़ती है तथा वे पूर्ण आयु के भोगनेवाले होते हैं।

वहाँ की स्त्रियों की ऊँचाई व आयु पुरुषों के समान होती है। जैसे - कल्पवृक्ष में कल्पवेल आसक्त होती हैं, इसी तरह वे अपने नीयत पुरुषों में अनुराग रखनेवाली होती हैं। मरणपर्यन्त दोनों प्रेम से भोग सम्पदा को भोगते हैं, सर्व भोगभूमिवासी स्वर्ग के देवों के समान स्वभाव से सुन्दर होते हैं। उनकी वाणी स्वभाव से मधुर होती है, उनकी चेष्टा स्वभाव से ही सुन्दर होती है। वहाँ पृथ्वीकायिक दस जाति के कल्पवृक्ष होते हैं। उनसे वे भोगभूमिवासी इच्छानुकूल आहार, घर, वादित्र, माला, आभूषण, वस्त्र आदि भोग की सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। कल्पवृक्षों के पत्ते सदा ही मन्द-मन्द सुगन्धित हवा से हिलते रहते हैं। काल के प्रभाव से व क्षेत्र की सामर्थ्य से ये कल्पवृक्ष प्रगट होते हैं। क्योंकि इनसे पुण्यवान मानवों को मन के अनुसार रुचिकर भोग प्राप्त होते हैं। इसलिए इनको विद्वानों ने कल्पवृक्ष कहा है। इनकी जातियाँ दस प्रकार की होती हैं -

(1) मद्योग, (2) वाजित्रांग, (3) भूषणांग,

(4) पुष्पमालांग, (5) ज्योतिरांग, (6) दीपांग, (7) गृहांग, (8) भोजनाँग, (9) पात्रांग, (10) वस्त्रांग।

जैसे इनके नाम हैं वैसी ही वस्तु के प्रगट करने में ये परिणमन करते हैं। भोगभूमिवासी इन कल्पवृक्षों से प्राप्त भोगों को अपने पुण्य के उदय से आयुपर्यन्त भोगते रहते हैं। आयु के अन्त में जम्हाई व छींक आने से प्राण त्यागते हैं। वे मन्द कषायी होने से पापरहित होते हैं। इसलिए सर्व ही स्त्री-पुरुष प्राण छोड़कर देव गति को जाते हैं। उनके शरीर मेघों के समान उड़कर विलव हो जाते हैं। इस तरह अवसर्पिणी पहले काल की विधि थोड़ी सी वर्णन की है। शेष सर्व अवस्था देवकुरु व उत्तरकुरु के समान जाननी चाहिए -

नोट - यहाँ कुछ श्लोक उपयोगी जानकर दिये जाते हैं, जिससे पाठकों को भोगभूमि की अवस्था का ज्ञान हो।

वज्रास्थिबन्धनाः सौम्याः सुन्दराकारचारवः।
निष्टप्तकनकच्छाया दीव्यन्ते ते नरोत्तमाः ॥13॥

मुकुटं कुण्डलं हारो मेखला कठकांगदौ।
केयूर ब्रह्मसूत्रं च तेषां शश्वाद्विभूषणम्॥14॥

महासत्त्वा महाधैर्या महोरस्का महौजसः।
महानुभावास्ते सर्वे महीयन्ते महोदयाः ॥16॥

निर्व्यायामा निरा तका निर्नीहारा निरामयाः।
निःस्वेदास्ते निराबाधं जीवन्ति पुरुषायुषं॥18॥

इस तरह पहला काल क्रम से ज्यों-ज्यों बीतता जाता था, कल्पवृक्षों की शक्ति, मनुष्यों की आयु व ऊँचाई धीरे-धीरे कम

होती जाती थी। चार कोड़ाकोड़ी सागर बीतने पर दूसरा सुखमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागर का प्रारम्भ हुआ। तब भोगभूमि के मानवों की आयु दो पल्य की रह गयी। शरीर की ऊँचाई चार हजार धनुष की हो गयी। चन्द्रमा की चाँदनी के समान शरीर का उज्ज्वल वर्ण हो गया। दो दिन के पीछे बहेड़ा (विभीतक) प्रमाण अमृतमयी अल्पाहार से तृप्ति पा लेते थे। उनकी सर्व अवस्था हरिवर्ष क्षेत्र में स्थिम मध्यम भोगभूमि वासियों के समान हो गयी। तब फिर क्रम से जैसे-जैसे काल बीतता गया शरीर की ऊँचाई, आयु, वीर्य आदि कम होते चले गये।

तीन कोड़ाकोड़ी सागर काल बीतने पर तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागर का प्रारम्भ हो गया। तब हेमवत् क्षेत्र के समान जघन्य भोगभूमि की अवस्था प्रगट हो गयी। तब भोगभूमि के मानवों की आयु एक पल्य की रह गयी। शरीर की ऊँचाई २००० धनुष या एक कोस की रह गयी। शरीर का रंग प्रियंगु के समान श्याम रंग का हो गया। एक दिन पीछे आमले के समान अमृतमयी भोजन करके वे तृप्ति पा लेते थे।

इस तरह तीसरा काल बीतते हुए जब एक पल्य का आठवाँ भाग समय शेष रहा तब कर्मभूमि की रचना के प्रवर्तानेवाले प्रतिश्रुत आदि चौदह कुलकर क्रम से हुए। चौदहवें कुलकर श्री ऋषभदेव के पिता श्री नाभिराजा हुए। नाभिराजा के समय तक मेघवृष्टि होने लगी। काली-नीले जल से भरे बादल घूमने लगे, बिजली कड़कने लगी, पवन चलने लगी, मेघों की गरज सुनकर मयूर नृत्य करने लगे। जलवृष्टि ऐसी हुई मानों कल्पवृक्षों के क्षय होने पर मेघों ने अश्रुपात की धारा वर्षा दी। सूर्य की किरणों व

जलबिंदुओं के स्पर्श से पृथ्वी अंकुरित हो गयी। द्रव्य, क्षेत्र, काल के निमित्त से परिणमन हो जाया करता है। धीरे-धीरे खेतों में अन्न पकने लगा। वृक्षों में फल पक गये।

अतिवृष्टि व अनावृष्टि न होने से, मध्यम वृष्टि होने से सर्व प्रकार के धान्य व फल पक गये। ईख, धान्य, जौ, गेहूँ, अलसी, धनिया, कोदों, तिल, सरसों, जीरा, मूंग, उड़द, चने, कुलथी, कपास आदि सर्व पदार्थ जिनसे प्रजा का जीवन हो सके फल गये। धान्य व फलादि के फलने पर भी प्रजा को यह न जान पड़ा कि किस तरह उनका उपयोग करना चाहिए।

कर्मभूमि का आगमन

चौथा काल आनेवाला है। कल्पवृक्षों का क्षय हो गया। प्रजाजन अपने प्राण रक्षा के लिये आकुलित हो गये। क्षुधा की वेदना से आकुल होकर सर्व मानव श्री नाभिराजा को महापुरुष जानकर उनके सामने प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! हम सब कैसे जीवें ? कल्पवृक्ष नष्ट हो गये। कितने ही वृक्ष फल व धान्य से नम्रीभूत खड़े हुए मानो हमको बुला रहे हैं। हम नहीं जानते हैं कि उनमें से किनको ग्रहण करना चाहिए व किन को छोड़ना चाहिए। इनका हम कैसे उपयोग करें सो सब विधि हमको बताइये।

आप महापुरुष हैं, ज्ञाता हैं, हम अज्ञानी हैं, कर्तव्यमूढ़ हैं। हमको कृपा कर सब भेद समझाइये। तब नाभिराजा ने सन्तोषित करके कहा कि कल्पवृक्षों के जाने पर ये वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, उनमें से अमुक-अमुक विषवृक्ष हैं, हानिकारक हैं, उनके फल ग्रहण करना नहीं चाहिए। इक्षु का रस निकालकर पीना चाहिए। धान्य को पकाकर खाना चाहिए।

दयालु नाभिराजा ने बर्तनों के बनाने की व पकाने की व भोजन की सब विधि बतायी। जो औषधियाँ थीं, उनको भी समझा दिया। प्रजा के कल्याण के लिये नाभिराजा कल्पवृक्ष के समान हो गये। प्रजा सब विधि जानकर बड़ी सन्तोषित हुई और सुख से प्राणयापन करने लगी। श्री नाभिराजा अकेले ही जन्मे थे, उनके समय जुगलियों की उत्पत्ति बन्द हो गयी थीं। तब इन्द्र की आज्ञा से देवों ने नाभिराजा का विवाह मरुदेवी के साथ कर दिया। कहा है—

तस्योद्वाहकल्याणं मरुदेव्या सम तदा।
यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशासनशासनात्॥81॥

देवों ने ही इन्द्र की आज्ञा से देशों की सीमा बाँधी; पत्तन, ग्राम, नगर नियत किये। अयोध्यापुरी की बड़ी ही सुन्दर रचना करी। तब से कर्मभूमि का कार्य प्रारम्भ हो गया। कर्मभूमि के तीन काल हैं – चौथा, पाँचवाँ, छठा।

चौथे काल का वर्णन

चौथा काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का है। चौथे काल के आदि में ही (नोट – हुण्डावसर्पिणी काल के कारण जब तीन वर्ष 8.00 मास तीसरे काल के शेष रह गये थे, तब ही श्री वृषभदेव मोक्ष पधारे थे) श्री वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर ने मोक्षमार्ग को प्रकट किया। इस काल में मानवों की उत्कृष्ट आयु एक करोड़ पूर्व की होती थी। 84,00,000 चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वांग का एक पूर्व होता है। मध्यम व जघन्य आयु अनेक प्रकार की होती थी, जिसका वर्णन परमागम से विदित होगा। जघन्य आयु एक अन्तर्मुहूर्त की होती थी।

चौथे काल में गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पाँचों कल्याणकों में पूजा को प्राप्त ऐसे चौबीस तीर्थंकर होते हैं। इनके सिवाय कितने ही महात्मा अपनी काललब्धि के बल से अतीन्द्रिय सुख को भोगते हुए निर्वाण को प्राप्त होते हैं। उन सर्व ही निर्वाण प्राप्त सिद्धों को हम नमन करते हैं। कितने ही महात्मा सम्यक्तपूर्वक महाव्रतों को या देशव्रतों को पालकर पहले स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं। कितने ही द्रव्यलिंगी मुनि चारित्र को पालकर सम्यक्त्व के बिना मिथ्यादृष्टि होते हुए भी पुण्य बाँधकर नौग्रेवेयिक पर्यन्त जाते हैं।

कितने ही सम्यक्त व व्रत दोनों से रहित होने पर भी भद्रपरिणामी पात्र-दान करके भोगभूमि में जाकर जन्म लेते हैं। कितने ही तिर्यंच व मनुष्य आयु बाँधकर पीछे सम्यग्दर्शन को पाते हैं और पात्र दान से भोगभूमि में जन्म लेते हैं। कितने ही भोगों में आसक्त रहते हैं, प्राणियों पर दया से बर्ताव नहीं करते हैं, कर्म से विमुख रहते हैं, दुष्ट भाव रखते हैं, वे नरक में जाकर दु:ख भोगते हैं। मनवों को दुष्टकर्म-पापकर्म का त्याग अवश्य करना चाहिए। क्योंकि पाप का बन्ध होने से उसका कटुक फल भोगना पड़ेगा। जो नर जन्म व धर्म साधनेयोग्य सर्व उचित सामग्री पाकर भी धर्मसेवन नहीं करते हैं, उनका यह सर्व योग्य समागम वृथा चला जाता है। फिर ऐसा नरजन्म का उत्तम धर्म साधन योग्य समागम मिलना बहुत कठिन है। क्योंकि चौथे काल में बन्ध व मोक्ष का मार्ग चलता है, इसीलिए साधुओं ने इसे कर्मभूमि का नाम दिया है। जैसा कहा है—

इतीत्थं तुर्यकालोऽसौ पन्था: स्याद्बन्धमोक्षयो:।
तस्मान्निगद्यते सद्भिभ: कर्मभूरितिनामत: ॥97॥

इस चौथे काल में बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र भी होते हैं, जिस काल में बिना किसी बाधा के चौबीस तीर्थंकरों को लेकर त्रेशठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं, वही चौथा काल है। इस काल में सर्व स्थानों पर महाव्रतधारी मुनि व देशव्रतधारी गृही श्रावक सदा दिखलाई पड़ते हैं। इस काल में पूजा दानादि नित्यकर्म में तत्पर व सदाचारी गृहस्थ दर्शन प्रतिमा से लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक यथाशक्ति ग्यारह प्रतिमाओं को पालते हुए सदा मिलते हैं। जो ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी व्रती श्रावक होते हैं, वे गृह को त्यागकर मुनि के समान परम वैराग्य भाव में स्थिर रहते हैं। चौथे काल में बालगोपाल सब प्रजाजन जैनधर्म को पालते हैं।

हुण्डावसर्पिणी काल

कभी भी अन्य किसी अजैन धर्म का प्रकाश नहीं होता है। किन्तु जब कभी हुण्डावसर्पिणी काल आ जाता है, तब उस काल में अनेक पाखण्ड मत चल पड़ते हैं व सत्य धर्म की हानि होती है।

असंख्यात कोटिवार उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के बीतने पर एक दफे हुण्डावसर्पिणी काल आता है। ऐसी बात अनन्त बार पहले हो चुकी है व अनन्त बार आगे होगी। जैसे किसी वर्ष में एक-एक मास अधिक का मल मास होता है, वैसे ही इस हुण्डावसर्पिणी काल को जानना चाहिए। इस हुण्डावसर्पिणी काल में बहुत से अनर्थ होते हैं। कालचक्र की मर्यादा को कोई रोक नहीं सकता।

जैसे काल के स्वभाव से ही वर्षा ऋतु के पीछे शरद ऋतु

आती है, वैसे काल के परिभ्रमण में हुण्डाकाल आता है। द्रव्यों का होना ही स्वभाव है। इस हुण्डावसर्पिणी काल में परमागम के अनुसार तीर्थंकर ऐसे महान आत्माओं को भी उपसर्ग होता है। चक्रवर्ती का मानभंग अपने ही कुटुम्ब से होता है। इत्यादि वचन से अगोचर बहुत अनर्थ होते हैं। तब प्राणीवध रूप हिंसा का प्रचार होता है। जिससे तीव्र पापकर्म का बन्ध होता है। ब्राह्मण वर्ग इसी काल में प्रकट होते हैं। अनिष्ट बुद्धिधारी ब्राह्मण यज्ञों के लिये पशुओं की हुई हिंसा से पुण्य का लाभ व कल्याण होना बताते हैं।

इस प्रकरण के श्लोक हैं —

कितु हुँडावसर्पिण्यां कालदोषादिह क्वचित्।
प्रादुर्भवन्ति पाखण्डास्तथापि च वृषक्षतिः ॥104॥

गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च।
असंख्यकोटिवारं स्यादेका हुँडावसर्पिणी ॥105॥

तद्यथा तत्र हुन्डावसर्पिण्यां वा यथागमम्।
तीर्थेशमुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम् ॥109॥

मानमंगश्च चक्रेशं जायते जातिपूर्वकः।
इत्यादि बहवोऽनर्थाः सन्ति वाचामगोचराः ॥110॥

हिंसा प्राणिवधश्चेयं दुष्कर्मार्जनकारणम्।
यागार्थं श्रेयसे हिंसा मन्यन्ते दुर्धियो द्विजाः ॥111॥

इस काल में प्रगटरूप से ब्रह्म अद्वैतवादी मत प्रगट होता है, जो एक अद्वैत ब्रह्म को ही मानते हैं और अनेक द्रव्य को नहीं मानते हैं। कितने ही एकान्त मतवादी तत्त्व को सर्वथा नित्य ही कहते हैं, वे आकाश को व आत्मा आदि को सर्वथा नित्य मानते

हैं। कितने ही क्षणिक एकान्तवादी तत्त्व को सर्वथा क्षणिक ही मानते हैं जैसे शब्द व मेघादि। कितने ही कापालिक मतवाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पाँच तत्त्वों को ही मानते हैं। वे जीव को नहीं मानते हैं। उनके मत में बन्ध व मोक्ष की अवस्था नहीं हो सकती है। कितने ही अज्ञानी मोक्ष का ऐसा स्वरूप मानते हैं कि वहाँ ज्ञानादि धर्मों की सन्तान का सर्वथा नाश हो जाता है। इन मतों के भीतर बहुत से भेदरूप मत इस हुण्डावसर्पिणी काल में ही प्रचलित होते हैं, और किसी अवसर्पिणी काल में नहीं होते हैं।

स्याद्वाद गर्भित श्री जिनेन्द्र की वाणी द्वारा जैन सिद्धान्त एकान्त मतों का उसी तरह खण्डन करता है जिस तरह वज्रपात से पर्वत चूर्ण हो जाते हैं। इन एकान्त मतों का खण्डन आगे कहीं करेंगे। यहाँ उनका कुछ स्वरूप मात्र कहा गया है।

इस हुण्डावसर्पिणी काल में नाना भेषधारी साधु प्रगट होते हैं। कोई त्रिशूलादि शस्त्र लिये रहते हैं, कोई जटाओं को बढ़ाते हैं, कोई शरीर में भस्म को लपेटते हैं, कोई एक दण्डी, कोई दो दण्डी, कोई त्रिदण्डी होते हैं। कोई हंस व कोई परमहंस होते हैं जो वन में निवास करते हैं। इस काल में इतने साधुओं के भेष प्रचलित हो जाते हैं कि उनका नाम मात्र भी कहा नहीं जा सकता। इस काल में राजा लोग भी पाप में रत दिखलाई पड़ते हैं। रोग पीड़ित साधु पाये जाते हैं। ऐसा होने पर भी परमार्थ को पहचाननेवाले महात्माओं का कर्तव्य है कि वे क्षणमात्र भी इस जैन धर्म को न भूलें। जैसे सुवर्ण अग्नि से तपाये जाने पर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है किन्तु और भी निर्मल हो जाता

है, वैसे ही सज्जन पुरुषों का कर्तव्य है कि क्षुद्र पुरुषों से पीड़ित होने पर भी वे कभी धर्म को न त्यागें। कहा है कि इस लोक में अनेक नीच अपने-अपने बाँधे हुए कर्मों के वश नाना भावों को रखनेवाले हैं, उनके कुत्सित भावों को देखते हुए भी योगियों का मन क्षोभित नहीं होता है। वे समभाव से सत्य वस्तु-स्वरूप को विचारकर अपना हित करते हैं। इस तरह चौथे काल की कुछ विधि कही है। अधिक वर्णन परमागम से जानना योग्य है।

जब चौथे काल में तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रहे थे, तब श्री वीर भगवान ने निर्वाण प्राप्त कर लिया। उसके पीछे ६२ वर्ष में तीन केवलज्ञानी मोक्ष पधारे - श्री गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी।

पंचम काल का वर्णन

तीन केवली के पीछे सौ वर्ष में चौदह पूर्वोक्त पारगामी पाँच श्रुतकेवली क्रम से हुए - विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु। उसके पीछे एक सौ अस्सी वर्ष में क्रम से दस पूर्व के ज्ञाता ग्यारह मुनिराज हुए - विशास्त्र, प्रोष्ठिक, क्षत्रिय, जयसा, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिमान, अंगदेव और धर्मसेन। यहाँ तक आत्मा आदि तत्त्वों का पूर्ण उपदेश होता रहा। उसके पीछे क्रम से दो सौ बीस वर्षों में ग्यारह अंग के पाठी पाँच मुनिश्वर हुए नक्षत्र, नयमाल, पांडु, ध्रुवसेन व कसाचार्य। इस समय तत्त्वोपदेश को कुछ हानि हो गयी।

जैसे हाथ की हथेली में रखा हुआ पानी बूँद-बूँद करके गिर जाता है। फिर एक सौ अठारह वर्षों में क्रम से प्रथम अंग के पाठी पाँच मुनि हुए सुभद्र, यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, लोहाचार्य।

इनके समय में तत्त्वोपदेश एक भाग ही रह गया। आगे-आगे चलकर और भी तत्त्वोपदेश कम हो गया। क्योंकि पंचम काल के दोष से मानवों की बुद्धि हीन होती चली गयी।

इस दुषमा पंचम काल में मानवों की आयु साधारणरूप से एक सौ बीस पर्यन्त की हो जाती है। इस काल में अप्रमत्त विरत सातवाँ गुणस्थान तक ही हो जाता है। कोई साधु उपशम या क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता है न इस काल में दोनों मन:पर्ययज्ञान होते हैं। देशावधि तो होती है, परन्तु परमावधि व सर्वावधि नहीं होती है। तप की हानि होने से सब ऋद्धियाँ सिद्ध नहीं होती हैं, पंच कल्याणकों के न होने से देवों का आगमन नहीं होता है। कहीं किसी समय कोई-कोई शुद्ध देव किसी कारण से आते हैं, ऐसा जिनागम में कहा है। उत्कृष्ट आयु 120 वर्ष की होती है, शरीर की ऊँचाई एक धनुष की या चार हाथ की होती है। जैसे-जैसे काल बीतता है, मानवों की आयु घटती जाती है, धर्म का भी कहीं-कहीं अभाव हो जाता है। इस काल में उपशम तथा क्षयोपशम दो ही सम्यक्त्व बाधारहित हो सकते हैं। केवलियों के न होने से क्षायिक सम्यक्त्व नहीं हो सकता है।

एक अन्य ग्रन्थ की गाथा में कहा है कि पहले काल में उपशम सम्यक्त ही होता है और सब कालों में पहला उपशम व दूसरा क्षयोपशम सम्यक्त दो होते हैं। क्षायिक सम्यक्त तब ही होता है जब श्री जिनेन्द्र केवल होते हैं। यहाँ कुछ श्लोक उपयोगी हैं :-

ततः श्रेण्योरभावः स्यान्मनः पर्ययवोधयोः।
देशावर्धिं विना परमसर्वावधिबोधयोः ॥142॥

ऋद्धीणां चापि सर्वासामभावस्तपसः क्षतेः।
नापि देवागमस्तत्र कल्याणामनाभावतः ॥142॥

कदाचित् कुत्रचित् केचित् क्षुद्रदेवा कथंचन।
आगच्छंति पुनस्तत्र सद्भिः प्रोक्तं जिनागमे ॥144॥

गाथा- पढमं पढमें णियदं पढमं विदियं च सव्वकालेसु।
ग्वाइयसम्मत्तो पुण जत्थ जिणो केवली तम्हि ॥1॥

इस दुखमा पंचम काल में महाव्रत और अणुव्रत दोनों का पालन हो सकता है, परन्तु अप्रमत्तविरत सातवें गुणस्थान के ऊपर गमन नहीं हो सकता है। जो कोई भद्र परिणामी हैं व दया धर्म व दान में तत्पर रहते हैं, शील तथा उपवास पालते हैं, वे निरन्तर स्वर्ग भी जाते हैं। इत्यादि कार्य जिस काल में होते है, वह दुखमा काल है ऐसा आप्त का उपदेश है।

छठे काल का आगमन

इस पंचम काल के अन्त में जो व्यवस्था होती है, वह भी कुछ वर्णन की जाती है। इस पंचम काल के बीतने पर दुखमा दुखमा नाम का छठा काल आता है, उसका भी कुछ कथन किया जाता है। पंचम काल के अन्त में किसी देश का कलंकी राजा हालाहल विष के समान धर्म का घातक प्रगट होता है। उसका भी सर्व व्यवहार प्रजा को पीड़ाकारी होता है। उस समय तक सर्व सुवर्णादि धातुएँ बिला जाती हैं। चमड़े का सिक्का चल जाता है, उसी से ही माल खरीदा व बेचा जाता है। वह दुष्ट राजा प्राणियों के बाँधने व मारने के ही वचन बोलता है ? जैनधर्म तक तक बराबर चलता रहता है, क्योंकि उस समय भी एक भावलिंगी मुनि, एक आर्यिका, एक जैन श्रावक, एक श्राविका मिलते हैं। कहा है -

अथ तत्रापि वृषः साक्षादव्युच्छिन्नप्रवाहतः।
यस्यादेको मुनिजनो विद्यते भावलिंगवान्॥157॥

एका चाप्यार्यिका तत्र यथक्तोव्रतधारिका।
सजानिः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायणः॥158॥

भावार्थ : वह कलंकी पापी राजा किसी दिन विचारता है व कहता है कि क्या कोई मेरी आज्ञा से विरुद्ध है ? मुझे कर नहीं देता है ? ऐसा सुनकर कितने अधम पुरुष कहते हैं कि – महाराज! एक जैन का मुनि है जो आपको कर नहीं देता है। कहा है –

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः॥161॥

भावार्थ : यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा धर्मात्मा होती है, यदि राजा पापी होता है तो प्रजा पापी होती है, यदि राजा समान होता है तो प्रजा समान होती है। लोग राजा का अनुकरण करते हैं। जैसा राजा होता है, वैसी प्रजा होती है।

ऐसा सुनकर वह राजा निर्दयी वचन कहता है कि जिस तरह जैन मुनि से दण्ड लिया जाये वैसा उपाय करना योग्य है। राजा की आज्ञा पाकर राजा के कुछ नौकर उन जैन मुनि के पीछे जाते हैं। जब वह भिक्षा के लिये भूमि निरखकर चलते हैं। जब वे पवित्रातमा किसी श्रावक के घर में निकट पहुँचते हैं और वह श्रावक नमोस्तु कहकर मुनि का पड़गाहन करके विधि के साथ भीतर ले जाकर व भक्ति पूजा करके दान देने को खड़ा होता है और मुनि शुद्ध भाव से अपने कर में जैसे भोजन का ग्रास लेते हैं। वैसे राजा के नौकर वज्रमई कठोर वचन कहते हैं कि तुम इस तरह भोजन नहीं कर सकते।

राजा की आज्ञा है कि पहला ग्रास राजा को कर के रूप में प्रतिदिन देना होगा। इतना सुनते ही आगम के ज्ञाता मुनि पंचम काल की अन्तिम अवस्था का विचार करते हैं और निश्चय करते हैं कि यह पंचम काल का अन्त समय है। इसीलिए ऐसा अनर्थ हो रहा है। शास्त्र के ज्ञाता मुनि उस आहार के ग्रास को छोड़ देते हैं और मुनि धर्म का चलना अशक्य जानकर सावधानी से जीवन पर्यन्त चार प्रकार के आहार का त्याग करके समाधिमरण धारण करते हैं। तब आर्यिका भी सब आहार त्यागकर सावधान हो समाधिमरण धारण करती हैं। अपनी धर्मपत्नी सहित श्रावक भी मुनि के समान संसार शरीर भोगों से विरक्त हो समाधिमरण स्वीकार कर लेते हैं। चारों ही सम्यक्ती महात्मा शरीर को त्यागकर स्वर्ग में देव उत्पन्न होते हैं।

पश्चात् उस कलंकी राजा के ऊपर भी बिजली गिरती है। उसकी शैय्या व गृह आदि सर्वनाश हो जाता है। उसी क्षण से ही दही, दूध, घी आदि विला जाता है, जैसे पाप के उदय से सम्पदा विला जाती है।

छठे काल का वर्णन

उस समय से दुखमा दुखमा नाम का छठा काल प्रारम्भ हो जाता है। उस समय भोग सामग्री नाश हो जाती है। तब उत्कृष्ट ऊँचाई एक हाथ ही हो जाती है। मध्यम जघन्य आयु व ऊँचाई आगम से जानना योग्य है। पशुओं की भी आयु व शरीर की ऊँचई आगम से जानना चाहिए। इस काल में मनुष्य तथा पशु सब दु:खों से पीड़ित होते हैं। फल आदि का आहार करते हैं। भूमि के बिलों में रहते हैं। मनुष्य वृक्ष की छाल के कपड़े पहनते

हैं। परस्पर विरोध रखते हैं। पशु भी महान दुष्ट होते हैं। रात-दिन लड़ते रहते हैं।

पापी निर्दयी प्राणी धर्मबुद्धि के अभाव से व दुष्ट काल के प्रभाव से एक-दूसरे को मार करके फल खाते हैं। वर्ष भर में वर्षा कभी कहीं होती है। प्राणियों में तृष्णा इतनी बढ़ जाती है कि कभी वह शान्त नहीं होती है। पापकर्म के उदय से इस तरह छठे काल के प्राणी बड़े कष्ठ से इक्कीस हजार वर्ष पूर्ण करते हैं।

49 दिन प्रलय होना

छठे काल के अन्त में काल के प्रभाव से इस आर्यखण्ड में प्रलय होती है। सात-सात दिन तक क्रम से अग्नि, रज आदि की वर्षा होती है। इस तरह लगातार उनचास दिन तक महान कष्टदायक भयंकर उपद्रव होता है। उस क्षेत्र के रक्षक देव बहत्तर जोड़ों को स्त्री पुरुष सहित ले जाकर गुफा आदि में रख देते हैं।

इस आर्यखण्ड में शेष सब कृत्रिम रचना भस्म हो जाती है। अकृत्रिम रचना बनी रहती है। उसे कोई नाश नहीं कर सकता है। चित्रा पृथ्वी नित्य बनी रहती है। इस तरह अनन्त बार काल के परिवर्तन में छठे काल के अन्त में प्रलय हो चुकी है। कहा है—

दासप्ततिजीवानां दम्पतीमिथुनं तदा।
तत्राधिकारिभिर्देवैर्नीयन्ते गह्वरादिषु ॥187 ॥

शेषमत्रार्यखण्डेऽस्मिन् कृत्रिमं भस्मसाद्भवेत्।
अकृत्रिमं तु केनापि कर्तुं शक्यं न चान्यथा ॥188 ॥

इस प्रकार भारतक्षेत्र में अवसर्पिणी के छह काल, फिर विरोध क्रम से उत्सर्पिणी के छह काल वर्तते रहते हैं।

मगधदेश वर्णन

ऐसे भरतक्षेत्र में मगधदेश पृथ्वी में प्रसिद्ध बसता है। जिस देश की प्रजा भोग-सम्पदा से नित्य प्रसन्न है व जहाँ सदा उत्सव होते रहते हैं। जिस देश में मेघों की वर्षा सदा हुआ करती है, वहाँ कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि इतियाँ नहीं होती हैं। न वहाँ अनीति का प्रचार हैं। राजाओं के द्वारा प्रजा को कर की बाधा नहीं पहुँचाई जाती है। वहाँ सदा सुकाल रहता है। वहाँ के खेत धान्य से व वृक्ष फलों से सदा फलते रहते हैं। फूलों से लदे हुए वृक्षों से मन्द-मन्द सुगन्ध आती रहती है। पथिकगण इसके रस को इच्छानुसार पीते हैं, जहाँ के कूप व सरोवर जल से भरे हुए हैं व मनुष्य के आताप को हरते हैं। वापिकाऐं निर्मल जल से भरी हुई मानवों की तृषा को बुझाती हैं, जिनके तटों पर वृक्षों की छाया हो रही है। वृक्षों ने सूर्य के आताप को रोक रखा है।

जिस देश में बड़ी नदियाँ स्वच्छ जल से पूर्ण कुटिलता से दूर तक बहती थीं, जिससे सर्व मानव व पशुपक्षी लाभ उठाते थे।

झीलों के तटों पर हंस कमल की दण्डी के साथ कल्लोल कर रहे थे। वनों में बड़े-बड़े मल्ल हाथी विचर रहे थे। जहाँ बड़े-बड़े दृढ़ वृषभ जिनके सींगों में कर्दम लगा है, जल-कमलों को देखकर पृथ्वी को खोद रहे थे। इस देश में स्वर्णपुरी के समान नगर थे। कुरुक्षेत्र की सड़कों के समान चौड़ी सड़कें थीं। स्वर्ग के विमानों के समान सुन्दर घर थे व देवों के समान प्रजा सुख से वास करती थी। उस देश में कहीं भंग उपद्रव न था। यदि भंग था तो जल की तरंगों में था। प्रजा में मद न था, मद था तो हाथियों में था। दण्ड देना नहीं पड़ता था, दण्ड कमलों में

था। सरोवरों में ही जल का समूह था, कोई नगर जलमग्न नहीं होता था। गायें ठीक समय पर गाभिन होती थीं। जैसे मेघों से जल मिलता है वैसे गायों से मनुष्यों को दूध मिलता था। उसको पीकर लोग हृष्टपुष्ट रहते थे। मगधदेश की स्त्रियाँ स्वभाव से ही सुन्दर थीं। पुरुष स्वभाव से ही चतुर थे। जहाँ घर-घर में कन्याएँ स्वभाव ही से मिष्टवादिनी थीं।

मगध देश के लोग श्री अरहन्तों की पूजा में व पात्रदान में बड़ी प्रीति रखते थे। ब्रह्मचर्य पालने में बड़े शक्तिशाली थे। अष्टमी, चौदश को प्रोषधोपवास करने में रुचिवान थे। कहा है -

यत्र सत्पात्रदाने षु प्रीतिः पूजासु चार्हताम्।
शक्तिरात्यंतिकी शीले प्रोषधे च रतिर्नृणाम्॥208॥

नोट - इससे कवि ने यह दिखलाया है कि मगधदेश में जैन धर्म का दीर्घ काल से प्रचार था। गृहस्थ लोग श्रावकों के नित्यकर्म में सावधान थे तथा सारा देश बड़ा सुखी था। प्रजा आनन्द में समय बिताती थी।

राजगृही नगर वर्णन

इस मगधदेश के एक भाग में राजगृही नगरी शोभायमान थी। जहाँ के राजसुभट इन्द्र के समान सदा शोभते थे। इस नगर में बड़े-बड़े प्रासादों के ऊपर तपाये हुए सुवर्ण के कलश शोभते थे। जिससे नगर - निवासियों को आकाश में सैकड़ों चन्द्रमाओं के चमकने की भ्राँति होती थी। वहाँ शिखरबन्द श्री जिनमन्दिर थे, जिन पर दण्ड सहित पताकाएँ हिल रही थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था कि आकाश में गंगा नदी के सैकड़ों प्रवाह बह रहे हैं।

महलों की खिड़कियों में या झारोखों में सुन्दर स्त्रियाँ अपना मुख बाहर निकाले हुए बैठी थीं। ऐसा विदित होता था कि झारोखों में कमल खिल रहे हैं। वहाँ की नारियों की सुन्दरता देखते-देखते देवियाँ चकित होती थीं। इसीलिए मानो उनके नेत्रों को कभी पलक नहीं लगती थी।

(**नोट** - देवदेवियों के कभी पलक नहीं लगती नेत्र सदा खुले रहते हैं, निद्रा नहीं आती)। उस नगर में नित्य नृत्य व गीत वादित्र की ध्वनि होती थी। सुगंधित धूप का धुआँ फैला रहता था, जिससे मयूरों को मेघों की गर्जना का भ्रम होता था और वे मोर ध्वनि करने लगते थे।

श्रेणिक महाराज का वर्णन

उस राजगृहनगर में राजाओं के राजा महाराज श्रेणिक राज्य करते थे जो बड़े बुद्धिमान थे। अनेक भूपाल उनके चरणों को मस्तक नमाते थे। राजा श्रेणिक के शरीर में सब ही लक्षण शुभ थे, जिनका वर्णन करना कठिन है, तो भी सामुद्रिक शास्त्रज्ञान के लिये कुछ लक्षण कहे जाते हैं। राजा के सिर पर नीले व घूंघरवाले बाल ऐसे शोभते थे मानो कामदेवरूपी काले सर्प के बच्चे ही प्रगट हुए हैं। भ्रमर के समान नेत्र थे, मुख कमल के समान था। जब राजा युद्ध करते थे, उनके मुख के भीतर से किरणें चारों तरफ फैल जाती थीं। वाणी बड़ी ही मधुर थी, फूल के रस से भी मीठी थी। राजा के दोनों नेत्र कर्ण तक लम्बे शोभते थे। उन नेत्रों ने सत्य शास्त्रों का ही आश्रय लिया है। वे सिखा रहे हैं कि बुद्धिमानों को सत्य श्रुत को ही सीखना चाहिए। राजा के कण्ठ में हार ऐसा शोभता था मानो ओस की बूँद ही हों या मानों

तारागणों को लेकर चन्द्रमा ही राजा की सेवा के लिये आ गया है। राजा के चौड़े वक्षस्थल में चन्दन चर्चा हुआ था। मानो सुमेरुपर्वत के तट पर चन्द्रमा की चाँदनी छाई हुई है।

राजा के सिर के ऊपर मुकुट मेरु के समान शोभता था, मानो मेरु के दोनों तरफ नील व निषध पर्वत ही हों। यहाँ नील पर्वत के समान केशों का भाग व निषिध के समान मुख का अग्रभाग तपाये सुवर्ण के समान था। राजा के शरीर के मध्य में नाभि नदी के आवर्त के समान गम्भीर थी। मानों कामदेव ने स्त्री की दृष्टि रोकने को एक जल की खाई ही खोद दी हो। राजा की कमर का मण्डल सुवर्ण की कधनीते व कमरबन्ध से वेष्ठित था, मानो जम्बूवृक्ष के चारों तरफ सुवर्ण की वेदी खड़ी की गयी है। दोनों जँघायें स्थिर, गोल व संगठित थीं, मानों स्त्रियों के मनरूपी हाथी के बाँधने के लिये स्तम्भ के समान शोभित थे। चरण लाल थे व बड़े कोमल थे, ये जलकमल के समान शोभित थे, जिनमें लक्ष्मी ने निवास किया था। राजा श्रेणिक के पास शास्त्ररूपी सम्पदा भी रूपसम्पदा के समान ऐसी शोभायमान थी जिससे देखनेवालों को शरद काल के चन्द्रमा की मूर्ति के देखने के समान आनन्द होता था। राजा का रूप सुखपद था वैसे ही उसका शास्त्रज्ञान आनन्ददाता था। राजा की बुद्धि सर्व शास्त्रों में दीपक के समान प्रवीणता से प्रकाश करती थी। वह शास्त्रों के पद व वाक्यों के समझने में बहुत चतुर थी। राजा श्रेणिक मधुर भाषी था, सुन्दर तनधारी था, विनयवान था, जितेन्द्रिय था, सन्तोषी था तथा राज्यलक्ष्मी को वश रखनेवाला था। श्रेणिक राजा को विद्या का प्रेम था, कीर्ति का भी अनुराग था, वादित्र बजाने का राग था।

उसके पास लक्ष्मी का विस्तार था, विद्वान लोग उसकी आज्ञा को माथे चढ़ाते थे।

राजा श्रेणिक ऐसा प्रतापी था कि उसके प्रताप की अग्नि की ज्वाला से अभिमानी शत्रु क्षणमात्र में इस तरह ठण्डे हो जाते थे जैसे आग के लगने से तिनके भस्म हो जाते हैं। जैसे कमल की सुगन्ध से खिंचे हुए भौरें कमल की सेवा करते हैं, वैसे बड़े-बड़े राजा-महाराजा श्रेणिक के चरणों को सदा प्रणाम करते थे।

इसी राजा ने पहले मिथ्यात्व अवस्था में अज्ञान से एक जैन मुनिराज को उपसर्ग किया था, तब तीव्र संक्लेशमयी भावों से सातवें नरक की आयु बाँध ली थी। वही बुद्धिमान श्रेणिक पीछे काललब्धि के प्रसाद से विशुद्ध भावधारी होकर क्षायिक सम्यग्दर्शन का धारी हो गया। वह शीघ्र ही कर्मों को नाश करनेवाला भावी उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर होगा। श्रेणिक राजा का सब वृतान्त अन्य कथा ग्रन्थों से जाना चाहिए, यहाँ विस्तार भय से संक्षेपमात्र ही कहा है।

धर्मात्मा रानी चेलना

राजा श्रेणिक की धर्मपत्नी चेलना रानी पतिव्रता, व्रत, शील व धर्म से पूर्ण सम्यग्दर्शन को धारनेवाली थी। यद्यपि अन्य अनेक स्त्रियाँ राजा के अन्त:पुर में थीं, परन्तु श्रेणिक चेलना के सहवास में ही अपने को अर्धांगिनी सहित मानता था। वह चेलना रूप, यौवन, सुन्दरता व गुणों की नदी थी। जैसे नदी समुद्र की तरफ जाती है, वैसे यह अपने भर्तार की आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। जैसे कल्पवृक्ष में लगी हुई कल्पवेल शोभती है, वैसे यह चेलना रति कार्य में अपने भर्तार से संलग्न ही शोभती थी।

श्री महावीर विपुलाचल पर

एक दिन सभा के भीतर नम्रीभूत राजाओं से सेवित महाराजा श्रेणिक सिंहासन पर विराजमान थे। जैसे-सुमेरु पर्वत पर झरने पड़ते हुए शोभते हैं, वैसे राजा पर ढुरते हुए चमर चमक रहे थे। चन्द्रमण्डल के समान सिर पर सफेद छत्र शोभता था। उस समय वन के माली ने आकर महाराज के दर्शन किये। और प्रणाम करके विनय सहित निवेदन करने लगा कि हे देव! मैंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष कुछ आश्चर्य भरी घटनाएँ देखी हैं, उन सर्व का थोड़ा सा भी वर्णन मैं नहीं कर सकता हूँ। तो भी हे महाराज! कुछ अवश्य कहनेयोग्य कहता हूँ -

इसी विपुलाचल पर्वत के मस्तक पर तीन जगत के गुरु महान श्री वर्द्धमान तीर्थंकर का समवसरण विराजमान है। मैं उस समवसरण की शोभा क्या कहूँ! जहाँ स्वर्ग के देवों के समूह नौकरों की तरह भक्ति व सेवा कर रहे हैं! स्वर्गवासी देवों के विमानों में क्षोभित समुद्र की ध्वनि के समान घण्टों के शब्द होने लगे। ज्योतिषी देवों के विमानों में महान सिंहनाद का-सा शब्द होने लगा, जिससे ऐरावत हाथी का मद दूर हो जावे। व्यन्तरों के घरों में मेघों की गर्जन को दूर करता हुआ दुन्दुभि बाजों का शब्द होने लगा तथा धरणेन्द्रों के या भवनवासियों के भवनों में शंख की महान ध्वनि हुई।

चार प्रकार के देवों ने जब यह ध्वनि सुनी, इन्द्रों के आसन कांपने लगे। भगवान को केवलज्ञान हुआ है, इस विजय को वे आसन सहन न कर सके। कल्पवृक्ष हिलने लगे, उनसे पुष्पों की वर्षा होने लगीं, सर्व दिशाएँ निर्मल झलकने लगीं, आकाश

मेघरहित स्वच्छ भासने लगा, पृथ्वी धूलरहित हो गयी, शीत व सुहावनी हवा चलने लगीं। जब केवलज्ञानरूपी चन्द्रमा पूर्ण प्रगट हुआ तब जगतरूपी समुद्र आनन्द में फूल गया। इसी समय सौधर्म इन्द्र कल्पित देवकृत ऐरावत हाथी पर चढ़कर विपुलाचल पर्वत पर आया।

अभियोग जाति के देव ने ऐसा मनोहर हाथी का रूप धारण किया कि उसके बत्तीस मुख थे व एक-एक मुख में आठ-आठ दाँत थे, एक-एक दाँत पर एक-एक कमलिनी के आश्रय बत्तीस-बत्तीस कमल के फूल थे, एक-एक कमल के बत्तीस-बत्तीस पत्ते थे, उन पत्तों में से हर एक पत्ते पर बत्तीस-बत्तीस देवांगना नृत्य कर रही थीं, उसका नृत्य अद्‌भुत था। ऐरावत हाथी पर चढ़ा हुआ इन्द्र था। उसके आगे कितनी देवियाँ मनोहर कण्ठ से श्री जिनेन्द्र का जयगान कर रही थीं। बत्तीस व्यन्तरेन्द्र चमर ढार रहे थे, सर पर मनोहर छत्र था, अप्सरा-देवियाँ मनोहर शोभा को लिये साथ में चल रही थीं, आकाश में देवी-देवों के द्वारा नील रक्त आदि रंग छा रहे थे, ऐसा मालूम होता था कि आकाश में सन्ध्याकाल का समय छाया हुआ है। देवों के सेनारूपी समुद्र में अनेक तरंगें उठ रही हैं। इन्द्रादि देवों ने दूर से समवसरण को देखा। इसे देव शिल्पियों ने बड़ी भक्ति से निर्माण किया था।

इस समवसरण की चौड़ाई एक योजन (चार कोस) थी। यह इन्द्रनीलमणि की भूमि से शोभित थी। यह समवसरण इन्द्रनीलमणि से रचा हुआ गोल था। मानों तीन जगत की स्त्रियों के मुख देखने का दर्पण ही है। जिस समवसरण को इन्द्र की आज्ञा से देवों ने रचा हो, उसकी शोभा का वर्णन कौन कर

सकता है। प्रथम धूलीशाल कोट है जो पाँच वर्ण के रत्नरजों से बना है। उसके चारों तरफ सुवर्ण के ऊँचे स्तम्भ हैं, जिसके तोरणों में रत्नमालाएँ लटक रही हैं। फिर कुछ दूर जाकर गलियों के मध्य में सुवर्ण रचित ऊँचे मानस्तम्भ हैं। जिनको दूर से देखने पर मानियों का मान गल जाता है। (यहाँ एक अन्य ग्रन्थ का श्लोक है जिसका भाव है कि) मानस्तम्भों के आगे चलकर सरोवर है। निर्मल जल की भरी वापिका है। फिर पुष्पों की वाटिकाएँ हैं, फिर दूसरा कोट है, नाट्यशाला है, उपवन है, वेदियों पर ध्वजाएँ शोभायमान हैं, कल्पवृक्षों का वन है, स्तूप है, महलों की पंक्तियाँ हैं, फिर स्फटिक मणि का कोट है, उससे आगे श्री मण्डप है, वहाँ बारह सभायें हैं, जहाँ देव, मनुष्य, पशु, मुनि आदि विराजते हैं। मध्य में पीठ है, उसके ऊपर स्वयंभू अरहन्त तीर्थंकर विराजते हैं ? यह पीठ या चबूतरा तीन कटनीदार है। मणियों की शोभा से शोभित है। भगवान के ऊपर चलते हुए चमरों की प्रतिबिम्ब पड़ती है, तब ऐसा मालूम होता है कि इन कटनियों पर हंस ही बैठे हैं।

आठ मंगल द्रव्य की सम्पदा शोभायमान है। ये मंगल द्रव्य जिनेन्द्र के चरण कमलों के निकट रहने से पवित्र हैं व गंगा के फेन समान निर्मल स्फटिकमणि से निर्मापित हैं। तीन कटनीदार पीठ पर गन्धकुटी है, जिस पर तीन लोक के नाथ विराजमान हैं। यह पीठ ऐसा शोभता है, मानों देवलोक के ऊपर सर्वार्थसिद्धि के समान है। इस पीठ के नीचे सुगन्धित धूप के घट मालाओं से विराजित हैं। उस गन्ध कुटी के मध्य में रत्नमयी सिंहासन मेरु शिखर का तिरस्कार करता हुआ शोभता है। उस सिंहासन पर अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान चार अंगुल ऊँचे अधर

अपनी महिमा से विराजमान हैं। कहा है —

विष्टरं तदलञ्च के भगवानन्ततीर्थकृत्।
चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्ना पृष्ठतत्तलम्॥289॥

आठ प्रातिहार्य

इन्द्रादि देव बड़ी भक्ति से पूजा कर रहे हैं। आकाश से मेघधारा के समान फूलों की वर्षा हो रही है। भगवान के पास आठ प्रातिहार्य शोभायमान हैं। अशोक वृक्ष वायु से अपनी शाखाओं को हिलता हुआ व सूर्य के आताप को रोकता हुआ भगवान के पास शोभ रहा है। चन्द्रमा की चाँदनी के समान धवल तीन छत्र शोभायमान हैं, मानों चन्द्रमा तीन रूप बनाकर तीन जगत के गुरु की सेवा कर रहे हैं। यक्षों द्वारा ढोरे हुए चमरों की पंक्तियाँ क्षीरसमुद्र की तरंगों के समान शोभ रही हैं। भगवान के शरीर की चमक में पड़ती हुई ऐसी मालूम होती हैं, मानो शरद काल के चन्द्रमा की चाँदनी ही फैली हो। आकाश में देवदुन्दुभी बाजे ऐसी मधुर ध्वनि से बज रहे हैं कि मोरगण मेघों के आने की शंका से मद से पूर्ण हो राह देख रहे हैं।

भगवान की देह का प्रभामण्डल बड़ा ही शोभायमान है, जिसके प्रकाश से स्थावर जंगम जगत मानो झलक रहा है। भगवान के मुख-कमल से मेघ की गर्जना के समान दिव्यध्वनि प्रगट हो रही है, जिससे भव्य जीवों के मन के भीतर का मोह अन्धकार नाश हो रहा है, जैसे प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है।

हे महाराज! इस तरह आठ प्रातिहार्यों से शोभित व अनेक देवों से सेवित श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र विपुलाचल पर्वत पर बिराजित हैं। उनके विराजने का ऐसा माहात्म्य है कि जिनका जन्म से

वैरभाव है ऐसे विरोधी पशु पक्षियों ने भी परस्पर वैरभाव त्याग दिया है। शान्ति से सिंह मृग आदि पास-पास बैठे हैं। जिनकी किसी कारण से इस शरीर से रहते हुए परस्पर वैरभाव हो गया था, वे भी भगवान के निकट आकर वैरभाव छोड़कर शांति से तिष्ठे हुए हैं। महाराज! हस्तिनी, सिंह के बालक को दूध पिला रही है। मृगों के बालक सिंहनी को माता की बुद्धि से देख रहे हैं। महाराज! वहाँ सर्पों के फणों पर मेंढ़क निःशंक बैठे हैं, जिस तरह पथिकजन वृक्षों की छाया में आश्रय लेते हैं।

महाराज! सर्व ही वृक्ष ऋतु के पत्तों से व फलों से फल रहे हैं और आनन्द के मारे लम्बी शाखाओं को हिलाते हुए नृत्य कर रहे हैं। खेतों में बड़े स्वादिष्ट धान्य पक रहे हैं। सर्व प्रकार की सर्व रोगनाशक व पौष्टिक औषधियाँ प्रजा के सुख के लिये प्रकट हो रही हैं। भगवान के प्रताप से दुर्भिक्ष आदि संकट इसी तरह मूल से नाश हो गये हैं। जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार बिला जाता है। हे महाराज! श्री महावीर जिनेन्द्र के विराजने से एक साथ इतने चमत्कार हो रहे हैं कि मैं इस समय कहने को असमर्थ हूँ।

महाराज श्रेणिक का महावीर समवसरण में आना

इस तरह वनपाल के मुख से सुखपद वचन सुनकर महाराज श्रेणिक का शरीर आनन्दरूपी अमृत से पूर्ण हो गया। इसी समय श्री जिनेन्द्र की भक्ति के भाव से सिंहासन से उठकर भगवान के सम्मुख मुख करके सात पग चलकर श्रेणिक ने तीन बार परोक्ष नमस्कार किया। तथा अपने सर्व परिवार को लेकर श्री महावीर भगवान की पूजा के लिये जाने की तैयारी करने लगा। भक्तिभाव से पूर्ण होकर धर्म की प्रभावना के लिये बड़े ठाठ-बाट से वन्दना के लिये चला। सेना को साथ लिया उसका क्षोम हुआ,

आनन्दप्रद बाजों की ध्वनि सब दिशाओं में छा गयी। हाथी, घोड़े, रथ, पैदलों की सेना साथ थी। हजारों ध्वजाएँ दूर से चमकती थीं। महान साज-सामान के साथ महाराज श्रेणिक समवसरण में पहुँचे। वह समवसरण सूर्य मण्डल की प्रभा को जीतनेवाला शोभायमान हो रहा था। प्रथम ही मानस्तम्भों की प्रदक्षिणा देकर पूजा की। फिर समवसरण की शोभा को क्रमशः देखते हुए महान आश्चर्य में भर गया।

श्री मण्डप के वहाँ पहुँचा, धर्मचक्र की प्रदक्षिणा दी, पीठ की पूजा की, फिर गन्धकुटी के मध्य में सिंहासन पर उदयाचल पर सूर्य के समान विराजित श्री जिनेन्द्र का दर्शन किया। जिनेन्द्र पर चमर ढूर रहे थे। भगवान आठ प्रातिहार्य सहित विराजमान थे। तीन लोक के प्रभु जिनेश्वरदेव की गन्धकुटी की तीन प्रदक्षिणा दी, फिर बड़ी भक्ति से श्री जिनेन्द्र की पूजा की। पूजा के पीठ बड़े भाव से स्तुति की। उस स्तुति का भाव यह है - आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो, आप दिव्यवाणी के स्वामी हैं, आप कामदेव को जीतनेवाले हैं, पूजनेयोग्य हैं, धर्म की ध्वजा हैं, धर्म के पति हैं, कर्मरूपी शत्रुओं के क्षय करनेवाले हैं, आप जगत के पालक हैं, आपका सिंहासन महान शोभायमान है, आपके पास अशोक वृक्ष शाखाओं से हिलता हुआ, धूप व आश्रय करनेवालों को छाया देता हुआ विराजमान है।

यक्ष भक्ति से चमर ढारते हुए मानो भक्तजनों के पापों को उड़ा रहे हैं। स्वर्गपुरी से पुष्प की वृष्टि हो रही है, मानो स्वर्ग की लक्ष्मी हर्ष के मारे अश्रुबिन्दु क्षेपण कर रही है। आकाश में देवदुन्दुभि बाजे बजते हैं। मानो आपकी जय घोषणा कर रहे हैं कि आपने सर्व कर्मशत्रुओं को विजय किया है। आपमें शुद्ध ज्ञान,

दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यग्दर्शन अनन्त दानादि लब्धियाँ हैं। मोतियों से शोभित आपके ऊपर तीन छत्र बिराजित हैं, जो आपके निर्मल चारित्र को प्रगट कर रहे हैं। आपके शरीर का प्रभामण्डल फैला हुआ है, मानो आपका पुण्य आपका अभिषेक करा रहा है। आपकी दिव्यध्वनि जगत के प्राणियों के मन को पवित्र करती है। आपका ज्ञान सूर्य का प्रकाश मोहरूपी अन्धकार को दूर रहा है।

आपका ज्ञान अनन्त है, अनुपम है व क्रमरहित है। आपका सम्यग्दर्शन क्षायिक है, सर्व विश्व को जानते हुए भी आपको किंचित् खेद नहीं होता है, यह आपके अनन्त वीर्य की महिमा है। आपके भावों में रागादि की कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्र से शोभित हैं। आपके पास स्वाधीन आत्मा से उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख है। जैसे निर्मल जल शीतल व मल से रहित भासता है। वैसे आपका सम्यग्दर्शन मिथ्यादर्शन की कीच से रहित शुद्ध भासता है। अनन्त दान भोगोपभोग लब्धियाँ आपके पास हैं, परन्तु उनसे कोई प्रयोजन आपको नहीं हैं; क्योंकि आप कृतकृत्य हैं, बाहरी सर्व विभूति का सम्बन्ध आपके लिये निरर्थक है। आप तो अनन्त गुणों के स्वामी हैं। मुझ अल्पबुद्धि ने कुछ गुणों से आपकी स्तुति की है। इस प्रकार परमश्चर्य सहित श्री भगवान जिनेन्द्र की स्तुति करके राजा श्रेणिक अपने मनुष्यों के बैठने के कोठे में गया और वहाँ बैठ गया।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगधदेश विख्यात है। उसमें श्री राजगृह नगरी राजधानी है। उसका राजा महाराज श्रेणिक श्री विपुलाचल पर्वत पर विराजित श्री वर्द्धमान भगवान के समवसरण में जाकर भक्तिपूर्वक तिष्ठा है।

दूसरा अध्याय

श्री जम्बूस्वामी पूर्वभव-भावदेव भवदेव स्वर्गगमन

संसार-दु:खों को हरनेवाले तीर्थंकर श्री सम्भवनाथ को व इन्द्रों से वन्दनीक श्री अभिनन्दनस्वामी को हम भावसहित नमस्कार करते हैं।

तब समवसरण में बिराजित राजा श्रेणिक प्रफुल्लित कमल समान दोनों हाथों को जोड़कर व भक्ति से नतमस्तक होकर श्री जगत के गुरु से तत्त्वों का स्वरूप जानने की इच्छा से यह प्रार्थना करने लगा कि हे भगवान्! सर्वज्ञ! मैं जानना चाहता हूँ कि तत्त्वों का विस्तार क्या है, धर्म का मार्ग क्या है, व उसका कैसा फल है। पुण्यवान महाराज श्रेणिक के प्रश्न करने पर भगवान श्री महावीर ने गम्भीर वाणी से तत्त्वों का व्याख्यान किया।

निरक्षरी ध्वनि

व्याख्यान करते हुए महान वक्ता के मुखकमल में कोई विकार नहीं हुआ जैसे-दर्पण में पदार्थों के झलकने पर भी कोई विकार नहीं होता है। तालु व ओष्ठ भी हिले नहीं। सर्व अंग से उत्पन्न होनेवाली निरक्षरी ध्वनि भगवान के मुख से प्रगट हुई - स्वयंभू के मुख से वाणी ऐसी खिरी जैसे पर्वत की गुफा से ध्वनि प्रगट हो। उस वाणी में अर्थ भरा हुआ था। कहा है —

ताल्वोष्ठमपरिस्यंदि सर्वांगेषु समुद्भवाः।
अस्पष्टकरणा वर्णा मुखादस्य विनिर्ययुः ॥7॥

स्फुगद्गिरिग्रहोद्भुतप्रतिध्वनितसंनिमः ।
प्रस्पष्टार्थ को निरागाद्ध्वनिः स्वायंभुवात् मुख्यात् ॥8 ॥

भगवान की इच्छा बिना भी जिनवाणी प्रगट हुई–महान पुरुषों की, योगाभ्यास से उत्पन्न शक्तियों की सम्पादा अचिन्त्य है। चिन्तवन में नहीं आ सकती है। कहा है –

विवक्षामन्तरेणापि विवक्ताऽसीत् सरस्वती।
महीयसामचिन्त्या हि योगजाः शक्तिसम्पदः ॥9 ॥

सात तत्त्वकथन

भगवान की वाणी प्रगट होने के पीछे गौतमगणधर ने कहा –हे श्रेणिक! मैं अनुक्रम से जीव आदि से लेकर कालपर्यन्त तत्त्वार्थ के स्वरूप को अनुक्रम से कहता हूँ सो सुनो। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष – ये सात तत्त्व सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के विषय हैं। पुण्य व पाप पदार्थ स्वभाव से आस्रव व बन्ध में गर्भित हैं। इसलिए तत्त्वज्ञानी आचार्य ने उनको तत्त्वों में नहीं गिना है।

द्रव्य लक्षण को धारण करने से लोक में छह द्रव्य हैं। जिसमें गुण व पर्याय हो उसको द्रव्य कहते हैं। जीव गुणपर्याय धारी है। इसलिए द्रव्य का लक्षण रखने से द्रव्य है। पुद्गल के भी गुणपर्याय होते हैं इसलिए पुद्गल को भी द्रव्य कहते हैं। इसी तरह गुणपर्याय के धारी अन्य चार द्रव्यों की भी सत्ता है अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल प्रदेशों की बहुतता रखनेवाले द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं। ऐसे अस्तिकाय स्वभाववाले पाँच द्रव्य हैं। काल के कायपना नहीं है। कालगुण के एक ही प्रदेश है इसलिए कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है। जितने आकाश

को एक अविभागी पुद्गल का परमाणु रोकता है, उसको प्रदेश कहते हैं। इस माप से मापने पर काल सिवाय अन्य पाँच द्रव्यों के बहु प्रदेश माप में आवेंगे। इसलिए जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व आकाश अस्तिकाय हैं। जीव आदि पदार्थों का जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तथा उनको वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान है। कर्मों के बन्धन के कारण भावों का जिससे निरोध हो वह चारित्र है। इन तीनों की एकता से कर्मों का नाश होता है इसलिए यह रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है। सम्यग्दर्शन को सम्यग्ज्ञान से पहले इसलिए कहा गया है कि सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को अज्ञान या मिथ्याज्ञान कहा जाता है।

यहाँ द्रव्यसंग्रह की गाथा दी है जिसका अर्थ है - जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। निश्चय से वह आत्मा का स्वभाव है। संशय विमोह विभ्रम रहित ज्ञान तब ही सम्यग्दर्शन कहलाता है जब सम्यग्दर्शन प्रगट हो जावे। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्र अपना वास्तविक कार्य करने को समर्थ होता है। यदि ये दोनों न हों वह चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। इन तत्त्वों का लक्षण तत्त्वज्ञान के लिये कुछ आगमानुसार कहा जाता है। द्रव्यों में अस्तित्व आदि सामान्य स्वभाव है तथा ज्ञानादि विशेष स्वभाव हैं।

जीवतत्त्व

यह जीव सदा से सत् है, अनादि-अनन्त है, नित्य है, स्वत: सिद्ध है। मूल में पुद्गल सम्बन्धी शरीरों से रहित है, असंख्यात प्रदेशों को रखनेवाला है, अनन्त गुणों का धारी है, पर्याय की

अपेक्षा जीव में व्यय उत्पाद होता है। जीव का विशेष लक्षण चेतना हैं, यह ज्ञातादृष्टा है, यह कर्ता है, यही भोक्ता है, निश्चय से अपने ही शुद्ध भावों का कर्ता-भोक्ता है। अशुद्ध निश्चय से रागद्वेषादि भावों का कर्ता व भोक्ता है। व्यवहारनय से द्रव्यकर्म व नोकर्म का कर्ता व भोक्ता है।

संसारदशा में समुद्घात के सिवाय प्राप्त शरीर के प्रमाण आकार का धरनेवाला है। वेदना, कषाय, विक्रिया, आहारक, तेजस, मारणांतिक व केवल समुद्घात में कुछ काल के लिये शरीर से बाहर फैलता है, फिर संकोच कर शरीराकार हो जाता है। नामकर्म के उदय से दीपक के प्रकाश की तरह संकोच विस्तार के कारण छोटे व बड़े शरीर में छोटे व बड़े शरीर प्रमाण होता है। मोक्ष होने पर अन्तिम शरीर प्रमाण रहता है। जब इस जीव के सर्व कर्मों का नाश हो जाता है, तब यह जीव शुद्ध ज्ञानादि गुणों के साथ उर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के ऊपर सिद्धक्षेत्र में विराजता है।

इस जीव को प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञ, ज्ञानी आदि नामों से कहते हैं। क्योंकि संसार के जन्मों से यह जीता था व जीवेगा। इसलिए इसको जीव कहते हैं। संसार से छूटकर मोक्ष होने पर भी सदा जीता रहता है, तब इसको सिद्ध कहते हैं। जीव के तीन भेद भी कहे जाते हैं— भव्य, अभव्य और सिद्ध। जिनके सुवर्ण धातु पाषाण के समान सिद्ध होने की शक्ति है, उनको भव्य कहते हैं। अन्ध पाषाण के समान जिनमें सिद्ध होने की शक्ति नहीं है, उनको अभव्य कहते हैं। अभव्यों को कभी भी मोक्ष के कारणरूप सामग्री का लाभ

नहीं होगा। जो कर्मबन्ध से मुक्त होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होते हैं और जो अनन्त सुख के भोक्ता हैं, वे कर्मों के अंजन से रहित निरंजन सिद्ध हैं। इस तरह जीवतत्त्व का संक्षेप में कथन किया गया। अब अजीव पदार्थ को कहता हूँ, सुनो—

अजीव तत्त्व

जिसमें जीव तत्त्व न हो उसको अजीव कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य। जो द्रव्य अमूर्तिक लोकव्यापी है व जो जीव और पुद्गल के गमन में उदासीन निमित्त कारण है, वह धर्म द्रव्य है, यह गमन में प्रेरणा नहीं करता है। जैसे मछली के इच्छापूर्वक गमन में जल सहायक है, जल मछली को प्रेरणा नहीं करता है, इसी तरह का लोकव्यापी अमूर्तिक अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलों के ठहरने में उदासीन निमित्त कारण है। जैसे वृक्ष की छाया पथिक को ठहरने में निमित्त कारण है - प्रेरक नहीं, इसी तरह अधर्म भी प्रेरक नहीं है। आकाश द्रव्य, अनन्त व्यापी, अमूर्तिक, हलन चलनक्रिया रहित, स्पर्श में न आने योग्य एक द्रव्य है, जो जीवादि पदार्थों को अवगाह देता है। काल द्रव्य वर्तना लक्षण है, सर्व द्रव्य अपने-अपने गुणों की पर्यायों में वर्तन करते हैं, उनके लिये कालद्रव्य निमित्त कारण है। जिस तरह कुम्हार के चक्र के स्वयं घूमने में नीचे की शिला कारण है। इसी तरह स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्यों की पर्याय पलटने में निमित्त कारण काल है ऐसा पण्डितों ने कहा है। व्यवहार समय घटिका आदि काल से ही मुख्य या निश्चय काल का निर्णय होता है, क्योंकि निश्चय काल के बिना व्यवहार काल नहीं हो सकता।

व्यवहार काल परम सूक्ष्म एक समय है, जो निश्चय काल-कालाणु द्रव्य की पर्याय है। जैसे वाहीक या पंजाबी को देखने से पंजाब का निश्चय होता है, पंजाब न हो तो पंजाब का निवासी नहीं कहा जा सकता। काल द्रव्य कालाणुरूप से असंख्यात है, लोकाकाश प्रमाण प्रदेशों में भिन्न-भिन्न रत्नों की राशि के समान व्यापक है। क्योंकि एक कालाणु का प्रदेश दूसरे कालाणु के प्रदेश से कभी मिलता नहीं है। इसलिए काल को काय रहित कहते हैं। शेष पाँच द्रव्यों के प्रदेश एक से अधिक हैं व परस्पर मिले हुए हैं, इसलिए इन पाँच द्रव्यों को पंचास्तिकाय कहते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल वे चार अजीव पदार्थ शरीरादि गुणरहित होने से अमूर्तिक हैं, केवल पुद्गल द्रव्य मूर्तिक हैं, क्योंकि उनमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पाया जाता है। पुद्गल के भेद सुनो :-

स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण—इन चार मुख्य गुणों के धारी पुद्गल द्रव्यों को पुद्गल इसलिए कहते हैं कि उसमें पूरण और गलन होता है। परमाणु मिलकर स्कन्ध बनते हैं, स्कन्ध से छूटकर परमाणु बनते हैं तथा परमाणुओं में भी पुरानी पर्याय का गलन व नई पर्याय का प्रकाश होता है। पुद्गलों के मूल दो भेद हैं - परमाणु और स्कन्ध परमाणुओं में रूक्ष तथा स्निग्ध गुण के कारण परस्पर बन्ध होने से स्कन्ध बनते हैं। दो-अंश अधिक चिकना या रूखा गुण होने से बन्ध हो जाते हैं, जैसे 12 अंश चिकना परमाणु 14 अंश चिकने व रूक्ष में मिल जाएगा या 15 अंश रूखा परमाणु 17 अंश रूखे या चिकने परमाणु में मिल जाएगा। जिसमें अधिक गुण होगा, वह दूसरे परमाणु को अपने

रूप कर लेगा। जघन्य अंशधारी चिकने व रूखे परमाणु का बन्ध नहीं होता है। स्कन्धों के अनेक भेद दो परमाणुओं के स्कन्ध से लेकर महास्कन्ध पर्यन्त हैं। छाया, धूप, अन्धेरा, प्रकाश आदि के स्कन्ध होते हैं।

पुद्गलों के छह भेद किये गए हैं - (1) सूक्ष्म सूक्ष्म, (2) सूक्ष्म, (3) सूक्ष्म स्थूल, (4) स्थूल सूक्ष्म, (5) स्थूल, (6) स्थूल स्थूल। सूक्ष्म सूक्ष्म एक अविभागी पुद्गल परमाणु है जो देखने में नहीं आता, अनुमान से ही जाना जाता है। सूक्ष्म पुद्गलों का दृष्टान्त कार्मणवर्गणा है, जिसमें अनन्त परमाणुओं का संयोग है तो भी वह इन्द्रियों के गोचर नहीं है। चार इन्द्रियों का विषय शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, सूक्ष्म स्थूल हैं! ये चारों आँख से नहीं दिखलाई पड़ते हैं। स्थूल सूक्ष्म पुद्गल, छाया, प्रकाश, आतप आदि हैं, जो आँख से दिखलाई पड़ते हैं परन्तु उनको न तो ग्रहण किया जा सकता है, न उनका घात किया जा सकता है। कहनेवाले द्रव्य स्थूल हैं। पृथ्वी आदि मोटे स्कन्ध जो टुकड़े करने पर स्वयं नहीं मिल सकते, स्थूल स्थूल हैं।

आस्रव तत्त्व

आस्रव के दो भेद हैं - भावास्रव और द्रव्यास्रव। कर्म के निमित्त से होनेवाले जीव के अशुद्ध भावों को भावास्रव कहते हैं। आगमानुसार भावास्रव के चार भेद हैं - मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग। जीवादि तत्त्वों का व सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान न होना मिथ्यात्व है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रह में वर्तन अविरति है। क्रोध, मान, माया, लोभ के वश होना कषाय है। मन, वचन, काय के निमित्त से आत्मा में चंचलता

होना योग है। इन भावास्रवों के निमित्त से कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल कर्मरूप अवस्था के होने को प्राप्त होते हैं, वह द्रव्यास्रव है।

बन्ध तत्त्व

आस्रवपूर्वक बन्ध होता है अर्थात् कर्मबन्ध के सन्मुख होकर बँधते हैं। इस बन्धतत्त्व के भी दो भेद हैं भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। जिन अशुद्ध भावों से बन्ध होता है, भाव बन्ध है। कर्मवर्गणा का कार्मण शरीर के साथ बँध जाना द्रव्यबन्ध है। बन्ध के चार भेद हैं - प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप स्वभाव पड़ना प्रकृतिबन्ध है। कितनी संख्या किस कर्म की बँधी सो प्रदेशबन्ध है। कर्मों में कितनी मर्यादा पड़ी, यह स्थितिबन्ध है। उन कर्मों में तीव्र व मन्द फलदान शक्ति पड़ना अनुभाग बन्ध है। चारों ही बन्ध एक साथ योग और कषायों से होते हैं।

संवर तत्त्व

आस्रव के रोकने को संवर कहते हैं। जिन शुद्ध भावों से कर्मों का आना रुकता है, वह भाव संवर है। कर्मों के आस्रव का रुक जाना, यह द्रव्य संवर है।

निर्जरा तत्त्व

कर्मों के आत्मा से अलग होने को निर्जरा कहते हैं। निर्जरा के दो भेद हैं - सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। जो कर्म पककर अपने समय पर झड़ता है, वह सविपाक निर्जरा है। जो कर्म पकने के पहले शुद्ध भावों से दूर किया जाता है, वह अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा संवरपूर्वक होती है व यही

कार्यकारी है। तत्त्वज्ञानियों ने इस निर्जरा के दो भेद कहे हैं। जिन शुद्ध भावों से कर्म की निर्जरा होती है, वह भाव निर्जरा है तथा उन शुद्ध भावों के प्रभाव से कर्मों का झड़ जाना द्रव्य निर्जरा है।

मोक्ष तत्त्व

जीव का सब कर्मों के क्षय होने पर अशुद्धावस्था को छोड़कर शुद्ध अवस्था को प्राप्त होना मोक्ष है। मोक्ष पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द आदि स्वभावों का प्रकाश स्वत: हो जाता है।

पुण्य पाप पदार्थ

शुभ भावों से पुण्य कर्म का व अशुभ भावों से पाप कर्म का बन्ध होता है। अहिंसादि व्रतों के पालने से शुभ भाव होते हैं। हिंसादि पापों से अशुभ भाव होते हैं।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामी ने श्रेणिक महाराज को सात तत्त्वों का वर्णन किया। इतने ही आकाश से कोई तेजमई पदार्थ उतरता हुआ दिखलाई पड़ा। ऐसा झलकता था कि सूर्य का बिम्ब अपना दूसरा रूप बनाकर पृथ्वीतल पर वीतराग भगवान की समवसरण लक्ष्मी के दर्शन करने को आया हो।

विद्युन्माली देव का आना

महाराजा श्रेणिक इस अकस्मात को देखकर आश्चर्य में भर गये। गौतमस्वामी से पुन: पूछा कि यह क्या दिखलाई पड़ रहा है ? ऐसा पूछने पर गौतमस्वामी कहने लगे कि हे राजन्! यह महाऋद्धि का धारी विद्युन्माली नाम का देव है, प्रसिद्ध है। अपनी चार महादेवियों को लेकर धर्म के अनुराग से श्री जिनेन्द्र की वन्दना करने के लिये शीघ्र-शीघ्र चला आ रहा है। यह

भव्यात्मा आज से सातवें दिन स्वर्ग से चयकर मानव जन्म में आएगा। यह चरम शरीरी है, उसी मनुष्य भव से मोक्ष जाएगा।

श्रेणिक के प्रश्न

गौतमस्वामी के वचन सुनकर राजा श्रेणिक भक्तिभाव से पूर्ण हो व परम प्रीतिपूर्वक तीन जगत के गुरु श्री जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करने लगे कि – हे कृपानिधि स्वामी! आपने अपनी दिव्यध्वनि से यह उपदेश किया था कि जब देवों की आयु छह मास शेष रह जाती है, तब उनके गले में पुष्पों की माला मुरझा जाती है, शरीर की चमक मन्द पड़ जाती है, उनके कल्पवृक्षों की ज्योति कम हो जाती है, महाराज! इस देव के मुख का तेज सब दिशाओं में व्याप्त है। इसका शरीर बड़ा तेजस्वी है, यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। यह बात बड़े आश्चर्य की है। तब सिंहासन पर बिराजमान श्री जिनेन्द्ररूपी देव ने राजा श्रेणिक के संशयरूपी अन्धकार को दूर करते हुए गम्भीर वाणी से यह प्रकाश किया कि हे राजन! इस देव का सर्व वृत्तान्त आश्चर्यकारक है। इस देव की कथा को सुनने से धर्मप्रेम की वृद्धि होगी व संसार शरीर भोगों से वैराग्य उत्पन्न होगा। तू चित्त लगाकर सुन।

भावदेव भवदेव ब्राह्मण

इसी धनधान्य सुवर्णादि से पूर्ण मगधदेश में पूर्व काल में एक वर्द्धमान नाम का नगर था। वह नगर वन व उपवनों की पंक्ति से व कोट खाई आदि से शोभनीक था। विशाल कोट के चार विशाल द्वार थे। जहाँ की महिलाएँ भी सुन्दर थीं, वस्त्राभूषणों से अलंकृत थीं। वहाँ ऐसे ब्राह्मण रहते थे जो वेद मार्ग को जाननेवाले थे। पुण्य के व हित के लाभ के लिये यज्ञ में हिंसा

पशुवध करते थे। मिथ्यात्व के अन्धकार से कुमार्गगामी विप्र यज्ञों में गौ, हाथी, बकरादि यहाँ तक कि मानव की भी बलि करते थे।

उन्हीं में एक 'आर्यावसु' नाम का ब्राह्मण रहता था, जो वेद का ज्ञाता व अपने धर्म कर्म में प्रवीण था। उसकी स्त्री सोमशर्मा बड़ी पतिव्रता सीता के समान साध्वी तथा पति की आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। उस ब्राह्मण के दो पुत्र भावदेव, भवदेव थे जो चन्द्रमा व सूर्य के समान शोभते थे। धीरे-धीरे दोनों पुत्रों ने विद्याभ्यास करके वेदशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, तर्क, छन्द, ज्योतिष, संगीत, काव्यालंकार आदि विषयों में प्रवीणता प्राप्त की। वे विद्यारूपी समुद्र के पार पहुँच गए।

ये दोनों ब्राह्मण वाद-विवाद करने में बहुत प्रवीण थे, ज्ञान-विज्ञान में चतुर थे। दोनों भाईयों में ऐसा प्रेम था, जैसा पुण्य के साथ सांसारिक सुख का प्रेम होता है। ये दोनों बिना किसी उपद्रव के सुख से बढ़कर कुमार वय को प्राप्त हुए। पूर्व पाप कर्म के उदय से उनके पिता महान व्याधि से पीड़ित हो गए। उसको कोढ़ का रोग हो गया। शरीर भर में कुष्ट रोग फैल गया। कान, आँख, नाक गलने लगे, अंग-उपांग सड़ने लगे, तीव्र वेदना से वह ब्राह्मण व्याकुल हो गया। यह प्राणी अज्ञान से पापकर्म बाँध लेता है।

जब उस कर्म का फल दु:ख होता है, तब उसको सहना दुष्कर हो जाता है। जो कोई स्वादिष्ट भोजन को अधिक मात्रा में खा लेता है, ऐसा जानकर बुद्धिमान को उचित है कि वह इन्द्रियों के विषयों को विष के समान कटुक फलदाई जानकर

छोड़ दे और विकाररहित मोक्षपद के देनेवाले धर्मामृत का पान करे कहा है —

अज्ञानेनार्यते कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः।
स्वादु संभोज्यते पथ्यं तत्पाके दुःखवानिव॥88॥

मत्वेति धीमता त्याज्या विषया विषसंनिभाः।
धर्मामृतं च पानीयं निर्विकारपदप्रदम्॥89॥

वह ब्राह्मण महान दुःखी होकर अपना मरण नित्य चाहता था। मरण न होते हुए वह पतंग के समान अग्नि की चिता पर पड़कर भस्म हो गया। अपने पति के वियोग से शोक पीड़ित होकर सोमशर्मा ब्राह्मणी भी उसी की चिता में भस्म हो गयी। माता-पिता दोनों के मरने पर ये दोनों भावदेव और भवदेव अत्यन्त दुःखी हुए-शोक के सन्ताप से तप्त हो गए। करुणा उत्पादक शब्दों से विलाप करने लगे। उनके निजी बन्धुओं ने समभाव से बहुत समझाया तब उन्होंने शोक को छोड़कर माता-पिता की मरणक्रिया की। जैसी ब्राह्मणों की रीति है, उसके अनुसार तर्पण आदि क्रिया की। फिर शोक के वेगों को दूर करके वे दोनों ब्राह्मण पहले के समान अपने घर के कामों में लग गए।

बहुत दिनों के पीछे उस नगर में एक 'सौधर्म' नाम के मुनिराज पधारे, जो धर्म की मूर्ति ही थे। जो बाहरी और भीतरी सर्व परिग्रह के त्यागी थे, जन्म के बालक के समान नग्न स्वरूप के धारी थे। मन, वचन, काय की गुप्ति से सज्जित थे, जैन शास्त्रों के अर्थ में शंका रहित थे, परन्तु व्रतों से कभी च्युत न हो जावें इस शंका को रखते थे; सर्व प्राणीमात्र पर दयालु थे, तथापि कर्मों

के नाश में दया रहित थे, मिथ्या एकान्त मत के खण्डन में स्याद्वाद बल के धारी थे, सूर्य के समान तेजस्वी थे, चन्द्रमा के समान सर्वांग शान्त थे, मेरु पर्वत के समान उन्नत व धीर थे। वे जैन साधु संसार के दावानल से तप्त प्राणियों को मेघ के समान शान्तिदाता थे। भवरूपी चातकों को धर्मोपदेशरूपी जल से पोषनेवाले थे, आलस्य रहित थे, इन्द्रियों के जीतनेवाले थे, ज्ञान विज्ञान से पूर्ण थे, गुणों के सागर थे, वीतराग गण के नायक थे, शत्रु मित्र जीवन मरण में समान भावधारी थे। लाभ-अलाभ में व मान-अपमान में विकार रहित थे, रत्नत्रय धारी थे, तपरूपी अलंकार से भूषित थे, संयम पालने में निरन्तर सावधान थे, वैराग्यवान होने पर भी प्राय: करुणा रस से पूर्ण हो जाते थे। ऐसे मुनिराज आठ मुनियों के संघ सहित वन में विराजमान हुए। कहा है -

सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यन्तरभेदत:।
यथाजातस्वरूपोऽपि समो गुप्तश्च गुप्तिभि: ॥96॥
स्याद्वादी कुमतध्वान्ते तेजसवी भानुमानिव?
सौम्य: शशीव सर्वांगे धीरो मेरुरिवोन्नत: ॥98॥

(नोट - जैन साधु का ऐसा स्वरूप होना चाहिए)

अवसर पाकर मुनिराज ने दयामई जैन धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

मुनिराज का धर्मोपदेश

हे भव्य जीवों! तुम सब श्रवण करो, यह धर्म उत्तम है। स्वर्ग तथा मोक्ष का बीज है, शुभ है व तीन लोक के प्राणियों का रक्षक है।

इस संसार में सर्व ही प्राणी यहाँ तक कि स्वर्ग के देव भी सब अपने-अपने कर्मों के उदय के वश हैं। उनको रंच मात्र भी सुख नहीं है। तो भी मोह के माहात्म्य से यह मूढ़ संसारी प्राणी ज्ञान के लोचन को बन्द किए हुए इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होकर सुख मान रहा है। यह शरीर अनित्य है, पुत्र-पौत्र आदि नाशवन्त हैं। सम्पदा, घर, स्त्री आदि सब छूट जानेवाले हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी इन सब अनित्य पदार्थों में नित्यपने की बुद्धि करता है। चाहता है कि ये सदा बना रहे। अपने को सुख मिलेगा, इस आशा से दु:खों के मूल कारण इन विषयभोगों में रमण करता है। जब विषयभोगों का वियोग हो जाता है, तब दु:खों से पीड़ित होकर पशु के समान कष्ट भोगता है।

क्षण भर में कामी हो जाता है, क्षणभर में लोभी हो जाता है, क्षण भर में तृष्णा से पीड़ित होता है, क्षण में भोगी बन जाता है, क्षण भर में रोगी हो जाता है, भूत पीड़ित प्राणी की तरह व्यवहार करता है। कहा है -

क्षणं कामी क्षणं लोभी क्षणं तृष्णापरायणः।
क्षणं भोगी क्षणं रोगी भृताविष्ट इवाचरेत्॥109॥

यह अज्ञानी मोही प्राणी बारबार राग-द्वेषमयी होकर ऐसे कर्म बाँधता है, जिनका छूटना कठिन हैं। इसलिए बारबार दुर्गति में जाता है। कभी अत्यन्त पापकर्म के उदय से नारकी होकर असहनीय ताडनमारणादि दु:खों को सागरों तक सहता है।

कभी तिर्यंच गति में जन्म लेकर या मनुष्यगति में नीच कुल में जन्म लेकर हजारों प्रकार के दु:खों से पीड़ित होता हुआ। इस संसार में भ्रमण किया करता है। चार गतियों में भ्रमण करते हुए

इस जीव को अनन्त काल हो गया। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी धर्म को न पाकर इसे कभी थिरता नहीं मिली। इसलिए जो कोई प्राणी सुख का अर्थी है, उसको अवश्य ही जिनेन्द्र कथित धर्म का संग्रह सदा करना चाहिए।

भावदेव मुनिदीक्षा

इस प्रकार मुनिमहाराज के शान्तिगर्भित अनुपम वचनों को सुनकर भावदेव ब्राह्मण का हृदय कम्पिति हो गया, संसार भ्रमण से भयभीत हो गया, मन में वैराग्य पैदा हो गया व हाथ जोड़कर सौधर्म मुनिराज से प्रार्थना करने लगा कि—हे स्वामी! मैं संसार-समुद्र में डूब रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिये, जिससे मैं अविनाशी आत्मिक सुख को प्राप्त कर सकूँ। कृपा करके मुझे पवित्र जैन साधु की दीक्षा दीजिए। यह दीक्षा सर्व परिग्रह के त्याग से होती है तथा यही संसार का छेद करनेवाली है ऐसा मुझे निश्चय हो गया है। भावदेव के ऐसे शान्त वचन सुनकर सौधर्म मुनिराज ने उसको सन्तोषप्रद वचन कहे—हे ब्रह्म! यदि तू वास्तव में संसार के भोगों को रोग के समान जानकर वैराग्यवान हुआ है तो तू इस जिनदीक्षा को धारणकर जो जीव संसार में रागी हैं, वे इसे धारण नहीं करते। गुरु-महाराज के उपदेश से शुद्ध बुद्धिधारी भावदेव को बहुत धैर्य प्राप्त हुआ। वह ब्राह्मणोत्तम सब शल्य त्यागकर मुनिदीक्षा में दीक्षित हो गया।

फिर वे सौधर्म योगीराज अपने संयम की विराधना न करते हुए पृथ्वीतल पर विहार करने लगे। वे मुनिराज गुणों में महान थे। ऐसे गुरु के साथ-साभ भावदेव मुनि पापरहित भाव से घोर तप करने लगा। दुःख तथा सुख में समान भाव रखता था।

एकाग्र भाव से कभी ध्यान कभी स्वाध्याय में निरन्तर लगा रहता था। विनयमान होकर ब्रह्म भाव को उत्पन्न करनेवाले शब्द ब्रह्ममयी तत्त्व का अभ्यास करता था। अर्थात् ॐ, सोऽहम् आदि मन्त्रों से निजात्मा के स्वरूप को ध्याता था। कहा है—

स्वाध्यायध्यानमैकाऽयं ध्यायन्निह निरन्तरम्।
शब्दब्रह्ममयं तत्वभ्यसन् विनयानतः ॥124॥

वह भावदेव मन में ऐसा समझता था कि मैं धन्य हूँ, कृतार्थ हूँ, बड़ा बुद्धिशाली हूँ, अवश्य भवसागर से तिरनेवाला हूँ जो मैंने इस उत्तम जैनधर्म का लाभ प्राप्त किया है।

बहुत काल विहार करते हुए वे सौधर्म मुनिराज एक दफे भावदेव के साथ उसी वर्द्धमानपुर में पधारे। उस समय विशुद्ध बुद्धिधारी भावदेव ने अपने छोटे भाई भवदेव को याद किया। भवदेव ब्राह्मण इस नगर में प्रसिद्ध था, परन्तु संसार के विषयों में अन्धा था, एकान्त मत के शास्त्रों में अनुरागी था, अपने यथार्थ आत्महित को नहीं जानता था। भावदेव के भावों में करुणा ने घर किया और यह संकल्प किया कि मैं स्वयं उसको जाकर सम्बोधूँ तो उसका कल्याण होगा। परम वैराग्यवान होने पर भी परहित की कांक्षा से उसके घर स्वयं जाने का मनोरथ कर लिया।

मैं उसको अर्हत् धर्म का उपदेश करूँ। किसी तरह भी यदि यह समझ जाएगा तो वह अवश्य संसार के भोगों से विरक्त होकर मुनि हो जाएगा, ऐसा अपने मन में विचार कर भावदेव अपने गुरु के पास आज्ञा माँगने के लिये गये और कहा—हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं जाकर अपने छोटे भाई को सम्बोधन करूँ, आपके प्रसाद से मेरे भाव में यह करुणा पैदा हुई

है। इस प्रकार गुरु को प्रसन्न करके व आज्ञा लेकर तथा बारम्बार नमस्कार करके भावदेव मुनि शुद्धभाव से ईर्या समिति पालते हुए—भूमि को निरखकर चलते हुए भवदेव के सुन्दर घर में पधारे। भवदेव के घर में आकर वहीं की अवस्था देखकर आश्चर्य में भर गए। क्या देखते हैं कि तोरणों में शोभित मण्डप छाया हुआ है। मंगलमयी बाजों के शब्द हो रहे हैं, जिनके शब्दों से दिशा चूर्ण होती है। युवती, स्त्रियाँ मंगलगान कर रही हैं, वन्दीजन वेद-वाक्यों से स्तुति पढ़ रहे हैं। चित्रों से लिखित ध्वजा हिल रही हैं। सुगन्धित कुन्द आदि फूलों की मालाएँ लटक रही हैं। कपूर से मिश्रित श्रीखण्ड से रचना बनी हुई है। ऐसा देखकर भी दयालु मुनिराज भावदेव उसके घर के आँगन में शीघ्र ही जाकर खड़े हो गये। मुनिराज को देखकर भवदेव उसी समय स्वागत के लिये उठा, नतस्मस्तक हुआ, उच्च आसन पर विराजमान किया, बार-बार नमस्कार किया और भावदेव मुनि के निकट विनय से बैठ गया।

भवदेव सम्बोधन व जैनधर्म ग्रहण

योगी महाराज ने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया व उसको सन्तोषित किया। तब भवदेव ने पूछा—हे भ्रात! आपके संयम में, तप में, एकाग्र चिन्तवन-ध्यान में, स्वात्मजनित ज्ञान में कुशल है? महान बुद्धिमति मुनि ने समभाव से कहा कि वत्स! हमें सब समाधान है। हमें यह तो बताओ कि इस घर में क्या हुआ था, क्या हो रहा है, व क्या होनेवाला है? हे भ्राता! तेरे घर में मण्डप का आरम्भ दिखायी पड़ता है, तेरा सौम्य शरीर परम सुन्दर व भूषणों से अलंकृत है। तेरे हाथ में कंकण बँधा है, तेरे यहाँ कोई

उत्सव दिखायी पड़ता है। गुरु महाराज के इन वाक्यों को सुनकर भवदेव ने मुख नीचा कर लिया। कुछ मुस्कुराते हुए व लज्जा से डगमगाते हुए वचनों से कहा—

हे स्वामी! इस नगर में दुर्भिषण नाम का ब्राह्मण रहता है, उसकी नागश्री नाम की स्त्री है। वह कुलवान व शीलवान है। उनकी नागश्री नाम की पुत्री है। बन्धुजनों की आज्ञा से उसके साथ आज मेरा विवाह वेदवाक्यों के साथ हुआ है। अपने छोटे भाई की इस उचित वाणी को सुनकर मुनिराज बोले—हे भ्राता! इस जगत में धर्म के प्रताप से कोई बात दुर्लभ नहीं है। धर्म से इन्द्रपद, सर्वसम्पदा से पूर्ण चक्रवर्तीपद, नारायण-प्रतिनारायणपद व राजा का पद प्राप्त होता है। धर्म का लक्षण सर्व प्राणियों पर दयाभाव है अर्थात् अहिंसा लक्षण धर्म है, वही धर्म यति तथा गृहस्थ के भेद से दो प्रकार हैं तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमय रत्नत्रय के भेद से तीन प्रकार हैं, ऐसा जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है। कहा है—

सर्वप्राणिदयालक्ष्मो गृहस्थशमिनोर्द्विधा।
रत्नत्रयमयो धर्मः स त्रिधा जिनदेशितः ॥151॥

मनुष्य जन्म बहुत कठिनता से प्राप्त होता है। ऐसे नर जन्म को पाकर जो कोई धर्म का आचरण नहीं करता है, उसका समय वृथा जाता है, ऐसा मैं मानता हूँ। इत्यादि मुनिरूपी समुद्र से धर्मामृत से पूर्ण पवित्र वचनों के रस को पीकर भवदेव बहुत सन्तुष्ट हुआ और उन्होंने भावपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

भवदेव का आहारदान

व्रतों को ग्रहण कर उसी समय मुनिराज से प्रार्थना की कि

स्वामी! आज मेरे घर में कृपाकर आप भोजन स्वीकार करें। धर्म के अनुराग से पूर्ण अपने छोटे भाई के वचन सुनकर मुनिराज ने दोषरहित शुद्ध आहार ग्रहण किया। कहा है—

पीचा वाक्यामृतं पूतं, प्राप्तं मुनिमहोदधेः।
भवदेवो ब्रतान्युच्चै, श्रावकस्यागृहीत्तदा॥153॥

संग्रहीतव्रतेनाशु, विज्ञप्तो मुनिनायकः।
स्वामिन्नत्र गृहे मेव्द्य त्वया भोज्यं कृपापर॥154॥

विज्ञप्तेरनुजस्यैव, भ्रातृधर्मानुरागतः।
सुनिः स शुद्धमाहारं, निःसावद्यं जघास सः॥155॥

(नोट – इन वाक्यों से मुनिराज की उदारता व सरलता व सज्जनता व निरभिमानता प्रगट होती है। एक यज्ञ की हिंसा को माननेवाला ब्राह्मण जब हिंसा को त्यागकर श्रावक के अहिंसादि बारह व्रतों को स्वीकार कर लेता है, तब उसी क्षण वह श्रद्धावान श्रावक माना जाने लगा। उसके हाथ का आहार उसी दिन लेना मुनि ने अनुचित नहीं समझा। उसको आहार की विधि सब बता दी थी। यद्यपि उसकी आत्मा एक निमन्त्रण रूप में थी। जैन मुनि निमन्त्रण नहीं मानते हैं, इस अतिचार का ध्यान उस समय मुनिराज ने उसके धर्मानुराग के महत्त्व को देखकर नहीं किया। यह उनका भाव था कि किसी प्रकार यह मोक्षमार्ग पर दृढ़ता से आरूढ़ हो जावे।

यद्यपि मुनि ने आहार अवश्य नवधाभक्ति से लिया होगा। जब भोजन का समय होगा तब उस श्रावक ने अतिथि संविभाग व्रत के अनुसार ही आहारदान दिया होगा। यदि वह स्वीकार नहीं करते तो उसका मन मुरझा जाता व धर्मप्रेम कम होने की

भी सम्भावना थी। इत्यादि बातों को विचार कर परम उदार, जिन धर्म के ज्ञाता, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को विचारनेवाले मुनिराज ने उसके हाथ का उसी दिन आहारदान लेना उचित समझा। किंचित् अतिचार पर ध्यान नहीं दिया। उसके सुधार का भाव अतिशय उनके परिणाम में था।)

आहार के पश्चात् भावदेव मुनिराज अपने गुरु सौधर्म के पास, जो अनेक मुनिसंघ सहित वन में तिष्ठे थे, ईर्यापथ शोधते हुए चलने लगे, तब नगर के कुछ लोग मुनि की अनुमति बिना ही विनय करने की पद्धति से मुनिराज के पीछे चलने लगे। वे लोग कितनीक दूर तक गये फिर अपने प्रयोजन के वश से मुनि को नमस्कार करके अपने-अपने घर लौट आये।

भवदेव छोटा भाई भी मुनि के साथ पीछे-पीछे गया था। वह भोला यह विचारने लगा कि जब मुनि आज्ञा देंगे कि तुम जाओ तब मैं लौटूँगा। इसी प्रतीक्षा से अपने गौरववश पीछे-पीछे चला गया। मुनि महाराज ने ऐसे वचन नहीं कहे न वह कह सकते थे; क्योंकि ये वचन अहिंसा व्रत घातक थे, वे मुनि धर्म-नाश से भयभीत थे व संयमादि की भले प्रकार सदा रक्षा करते थे।

इस तरह चलते-चलते वह बहुत दूर चला गया। यद्यपि भवदेव मोक्ष का प्रेमी हो गया था तो भी उसके कंकण की गाँठ थी। उसका चित्त आकुलित होने लगा। वह बारबार अपने मन में नवीन वधू नागवसू के मुखकमल को याद करता था। उसका पग मूर्छित मानव की तरह लड़खड़ाता हुआ पड़ता था।

घर लौटने की इच्छा से कुछ उपाय विचार कर वह भवदेव अपने भाई भावदेव से किसी बहाने से बार-बार कहने लगा

कि—हे स्वामी! यह वृक्ष हमारे नगर से दो कोस दूर है आप स्मरण करें, यहाँ आप और हम प्रतिदिन क्रीड़ा करने को आते थे व बैठते थे। महाराज! वह देखिये। कमलों से शोभित सरोवर है। यहीं हम दोनों मोर की ध्वनि सुनने को बैठते थे। स्वामी देखिये, यह नाना वृक्षों से संगठित लगाया हुआ बाग है, जहाँ हम दोनों बड़े भाव से पुष्प चुनने को आया करते थे।

कृपानाथ! यह वह चाँदनी के समान उज्ज्वल स्थान है, जहाँ हम सब गेंद खेला करते थे। (नोट-गेंद खेलने का रिवाज पुरातन है।) इस तरह बहुत से वाक्यों से भवदेव ने अपना अभिप्राय कहा परन्तु भवदेव श्री मुनिराज के मन को जरा भी मोहित न कर सका। मुनिराज मौन से जा रहे थे न वचन से हुंकार शब्द कहते थे न भुजा का संकेत करते थे। चलते-चलते दोनों भाई श्री गुरु महाराज के निकट पहुँच गये। वे दोनों वृषभों के समान धर्मरूपी रथ की धुरा को चलानेवाले थे।

भावार्थ—दोनों मोक्षगामी आत्मा थे। तब सब मुनियों ने भावदेव मुनि को कहा—हे महाभाग! तुम धन्य हो जो अपने भाई को यहाँ इस समय ले आये हो।

भावदेव मुनि भक्तिपूर्वक सौधर्म गुरु को नमस्कार करके अपने योग्य स्थान पर बैठ गये।

वहाँ के शान्त वातावरण को देखकर भवदेव अपने मन में विचारने लगा कि मैंने नवीन विवाह किया है। मैं यहाँ संयम धारण करूँ या लौटकर घर को जाऊँ? सूझ नहीं पड़ता है, क्या करूँ? चित्त में व्याकुल होने लगा, संशय के हिंडोले में झूलने लगा। अपने मन को क्षणभर भी स्थिर न कर सका। कभी यह

सोचता था कि नवीन वधु के साथ घर जाकर दुर्लभ इच्छित भोग भोगूँ। मेरे मन में लज्जा है, इस बात को मैं कह नहीं सकता, तथा यह मुनिश्वरों का पद बहुत दुर्धर है। कामरूपी सर्प से मैं डसा हुआ हूँ। मेरे जैसा दीन पुरुष इस महान पद को कैसे धारण कर सकेगा? तथा यदि मैं गुरु वाक्य का आमादा करके दीक्षा धारण न करूँ तो मेरे बड़े भाई को बहुत लज्जा आयेगी।

इस तरफ दोनों पक्ष की बातों को विचा कर शल्यवान होकर यह सोचने लगा कि दोनों बातों में कौन सी बात करनेयोग्य है, कौन सी करनेयोग्य नहीं है, यही स्थिर किया कि इस समय तो मुझे जिनदीक्षा लेना ही चाहिए, फिर कभी अवसर होगा तो मैं अपने घर लौट आऊँगा।

भवदेव को मुनिदीक्षा

इस तरफ कपटसहित वह भवदेव नतमस्तक होकर मुनि महाराज को कहने लगा कि—स्वामी! कृपा करके मुझे अर्हत् दीक्षा प्रदान कीजिए। मुनिराज ने अवधिज्ञानरूपी नेत्र से यह जान लिया कि यह ब्राह्मण अपने मन के भीतरी अभिप्राय को छिपा रहा है। भोगों की अभिलाषा रखते हुए भी दीक्षा लेना चाहता है, यह भी जाना कि यह भविष्य में वैरागी हो जाएगा, ऐसा समझकर महामुनि ने मुनिदीक्षा प्रदान कर दी। भवदेव ने सर्व के समक्ष निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली तो भी उसका मन काम की अग्निरूपी शल्य से रहित नहीं हुआ। उसके मन में यह बात खटकती रही कि मैं कब उस तरुणी, चन्द्रमुखी, मृगनयनी अपनी भार्या को देखूँ जो मेरे पर मोहित है व मेरे बिना दु:खी होगी, मेरा स्मरण भले प्रकार करती होगी, मेरे बिना उसका चित्त

सदा व्याकुल रहेगा। ऐसा मन में चिन्तवन करता रहता था तो भी बराबर ध्यान, स्वाध्याय, ज्ञान, तप व व्रत में लगा रहता था।

भवदेव का पत्नी प्रति गमन

बहुत काल पीछे एक दिन संघसहित सौधर्म गणी विहार करते हुए फिर उस वर्द्धमान नगर में पधारे। सर्व ही संयमी मुनि नगर के बाहर उपवन में एकान्त स्थान में ठहर गये। जब अनेक मुनि शुद्धात्मा के ध्यान की सिद्धि के लिये कार्योत्सर्ग तप कर रहे थे, तब भवदेव मुनि पारणा करने के छल से नगर की ओर चला। उसका चित्त इस बात में उत्सुक हो रहा था कि शीघ्र अपनी स्त्री को देखूँ। मार्ग में चलते हुए कामभाव से पीड़ित हो यही विचारता रहता था कि आज मैं घर जाकर मनोहर पत्नी का संभोग करूँगा, मेरे बिना विरह से वह इसी तरह आतुर होगी जिस तरह से जल के बिना मछली तड़फड़ती है। इसी तरह चिंतवन करते हुए मार्ग के क्रम से चलकर उसने ग्राम में प्रवेश किया।

भवदेव मुनि सन्ध्या के समय लाल रंग सहित सूर्य के समान था, जो रात्रि होने के पहले पश्चिम दिशा को जा रहा हो। ग्राम में जाकर उसने एक सुन्दर व ऊँचे जिनमन्दिर को देखा। ऊँचे तोरणों से वह सुशोभित था, ध्वजाओं से अलंकृत था, रत्न और मोतियों की मालाओं से अतिशय सुशोभित था। मन्दिर में गाना बजाना व महाउत्सव हो रहा था। स्त्रियाँ जाती व आती थीं। भवदेव मुनि मन्दिर के भीतर गया और तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्र की शान्त मूर्ति को नमस्कार किया और अपने योग्य स्थान पर बैठ गया।

स्वपत्नी आर्यिका से भवदेव की भेंट

उस चैत्यालय में एक प्रसिद्ध आर्यिका व्रत से पूर्ण विराजमान थीं। तप के कारण जिसके शरीर की हड्डियाँ रह गयी थीं। मुनिराज का दर्शन करके उसने आकर नमस्कार किया फिर आर्यिकाओं से निवेदन किया—महाराज! आपके ज्ञान में ध्यान व स्वभाव में भले प्रकार कुशलता है? मुनिराज ने भी यथायोग्य आर्यिका के व्रतों की कुशल पूछी। कुछ देर पीछे मन में विषय की इच्छा रखनेवाले भवदेव मुनि ने समभाव से आर्यिका की ओर देख के कहा—हे आर्ये! इस नगर में आर्यवसु ब्राह्मण के दो विद्वान सर्वसम्मत प्रसिद्ध पुत्र थे। बड़े का नाम भावदेव व छोटे का नाम भवदेव था। भवदेव वेदपारगामी व वक्ता था। हे पवित्रे! यदि तुम जानती हो तो कहो, मेरे मन में संशय है वह दूर हो जाए कि वे दोनों किस तरह रहते हैं, अब उनकी क्या अवस्था है?

सुचारित्रव्रती व निर्विकार भाव को रखनेवाली आर्यिकाजी ने कहा—वे दोनों ब्राह्मण काल आदि लब्धि के योग से मुनि हो गये हैं। यह सुनकर आतुरचित्त भवदेव फिर प्रश्न करने लगा, मानों अपने मन के छिपे हुए अभिप्राय को उगल रहा है।

हे आर्ये! एक संशय और है सो मैं पूछता हूँ, क्योंकि महान पुरुषों के मन में भी संशय का होना दूषित नहीं है। भवदेव की विवाहिता स्त्री जो नागवसु थी वह पति के चले जाने से अब किस तरह है? विकार सहित इस वचन को सुनकर उस आर्यिका को विदित हो गया कि यही मेरा पूर्व का भर्तार है, इसके मन में भय पैदा हो गया, शरीर काँपने लगा, वह विचारने लगी कि कह मूढ़बुद्धि धैर्यरहित है, कामाँध है, दु:सह कामभाव से पीड़ित है,

यह निश्चय से मुनिपद को छोड़ना चाहता है, इसलिए धर्मानुरागवश मुझे अब इसे सम्बोधना चाहिए। कदाचित् यह कामी होकर सर्वथा भोगों की इच्छा करता है लेकिन मैं तो प्राणों के अन्त तक अपने व्रत मैं दृढ़ रहूँगी, ऐसा सोचकर चारित्रव्रती व दृढ़ व्रतों को पालनेवाली आर्यिका विनय से मस्तक झुकाकर सरस्वती के समान प्रिय वचन कहने लगी—

आर्यिका का भवदेव को उपदेश

हे स्वामिन्! आप पूज्य हैं, महान बुद्धिमान हैं, धन्य है जो आपने तीन लोक में महान पुरुषों को भी ऐसे दुर्लभ ऐसे चारित्र को अंगीकार किया है। आप परम पवित्र मुनि हैं, इन्द्रों में भी पूज्य हैं, आप मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वयंवर हैं, सर्व सम्पदा के विधान हैं। हे सौम्य! आपके समान ऐसा कौन है जो स्वर्ग में भी दुर्लभ ऐसे महानभोगों को पाकर अपनी तरुण वय में उनको त्याग देवे। वास्तव में भोग प्रारम्भ में मीठे लगते हैं, परन्तु उनका फल कड़वा होता है। ये भोग हलाहल विष के समान भवभव में प्राणों के हरनेवाले हैं। कहा है—

प्रारम्भे मधुरा भासा, विषा के कटुकाः स्फुटम्।
हालाहलनिभा भोगाः सद्यः प्राणापहारिणः ॥216॥

ऐसा कौन मूर्ख है जो अमृत को छोड़कर विष की इच्छा करेगा? सुवर्ण को त्यागकर पत्थर को ग्रहण करेगा? कौन ऐसा अधम है जो स्वर्ग व मोक्ष के सुख को छोड़कर नरक जाएगा— जिनेश्वरी दीक्षा को छोड़कर इन्द्रियों के भोगों की कामना करेगा? इत्यादि नाना प्रकार के बोधप्रद वाक्यों से श्रीमती आर्जिकाजी ने

समझाया तो मुनि का भाव पलट गया, लज्जा से मुख नीचा कर लिया। फिर वह कहने लगी—आपने जिस नागवसु की कामना करके प्रश्न किया था, वह नागवसु आपके सामने बैठी हूँ। आप देख ले, मैं आप मुनिराज के भोगने योग्य नहीं हूँ। मेरा यह शरीर कृमियों से पूर्ण है। नव द्वारों से मल बहता है, महा अपवित्र है। मुख से अपवित्र लार बहती है। सिर खरबूजे के समान है। वचन सम्बन्ध रहित लड़खड़ाते निकलते हैं। शब्द भयानक अस्पष्ट निकलते हैं। दोनों कपालों में गड्ढे पड़ गये हैं। आँखें कूप के समान भीतर को गहरी हो गयी हैं।

बहुत क्या कहूँ, ऐसे कुत्सित शरीर को धरनेवाली मैं आपके सामने बैठी हूँ। मेरी भुजाओं का माँस सूख गया है। पयोधर पतित हो गये हैं, मानों प्रमादी सेवकों के समान हैं। सर्व अंग में चमड़ा हड्डी दिख रहा है। मैं अब सर्व काम की इच्छा रहित हूँ। श्राविका के व्रतों में तत्पर हूँ। यह बड़े धिक्कार की बात है, यह बड़ा दुर्भाग्य है जो आपने बार-बार मुझे स्मरण करके शल्य सहित इतना काल, हे धीर! वृथा गमाया है। निश्चय से इस स्त्री की शरीररूपी कुटी में कोई बात सुन्दर नहीं है इसलिए अपने मन को शीघ्र विरक्त करके शल्यरहित होकर उत्तम तप का साधन करो जिससे स्वर्ग व मोक्ष के सुख प्राप्त होते हैं। सुखाभास को देनेवाले इन विषयभोगों से क्यों वृथा जन्म खोना? इस जीव ने अनन्त बार स्त्री आदि महान भोगों को भोगा है और जूठन के समान छोड़ा है।

हे मुने! उनके भीतर अनुराग करने से क्या फल होगा? केवल दु:ख ही मिलेगा। ऐसे धर्मरसपूर्ण वचन सुनकर मुनि

महाराज का मन स्त्री के सुख से विरक्त हो गया। कुछ लज्जावान होकर वह अपने को बार-बार धिक्कारने लगा। मुनि प्रतिबुद्ध होकर आर्यिकाजी की बार-बार प्रशंसा करने लगे। मैं भवदेव तेरे वचनों के संयोग से उसी तरह निर्मल हो गया, जिस तरह अग्नि के संयोग से सुवर्ण निर्मल हो जाता है।

हे आर्ये! तू धन्य है। मैं भवसमुद्र में डूब रहा था, तू मेरे लिये आज नौका के समान हुई है। तूने मुझे मोह के अगाध जल से भरे हुए व सैकड़ों आवर्त व भ्रमण से मुझे इस संसार-समुद्र में डूबते हुए बचा लिया।

भवदेव का फिर मुनि होना

इतना कहकर मुनि शीघ्र ही उठे और शल्यरहित होकर मुनिराज के निकट पहुँचे जैसे-चिरकाल से समुद्र के आवर्त में पड़ा हुआ जहाज छूटकर अपने स्थान को पहुँचे। मुनिनाथ को नमस्कार करके व योग्य स्थान में बैठकर भवदेव ने अपना सर्व वृत्तान्त जो कुछ बीता था वह सब शुद्धभाव से वर्णन कर दिया। उसी समय पूर्व की दीक्षा छेदकर फिर से उसने मुनि का संयम धारण किया। अब वह भावों की शुद्धि से साक्षात् कर्मों को जीतनेवाला यति हो गया। कहा है—

छेदोपस्थापनं कृत्वा, ततश्चेतः स संयमी।
जातः साक्षान्मुनिर्जेता, कर्मणां भावशुद्धितः ॥234॥

अब वह भवदेव राग-द्वेष से रहित होकर आत्मध्यान में रत हो गये। अपने बड़े भाई के साथ बराबर तप करते हुए रहने लगे।

अब यह भवदेव मुनि अपने शरीर में भी राग रहित थे।

केवल मुक्ति के संगम की भावना थी। क्षुधा, तृषा आदि दुःखों को समभाव से सहन करते थे। शत्रु, मित्र, तृण, सुवर्ण, लाभ अलाभ में समभाव धारते थे, शान्त थे, निन्दा स्तुति में भी निर्विकार थे। वह बुद्धिमान जीवन मरण में भी समान भाव के धारी थे। कहा है—

निस्पृहः स्वशरीरेऽपि, सस्पृहोमुक्तिसंगमे।
सहिष्णुः क्षुत्पिपासादिदुःखानां समभावतः ॥236॥
अरिमित्रतृणस्वर्णलाभालाभसमः शमी।
निंदास्तुतिसमो धीमान्, जीविते मरणे समः ॥237॥

भावदेव भवदेव तीसरे स्वर्ग में देव

अन्त में दोनों भ्राता मुनियों ने समाधिमरण पूर्वक विमलांचल पर्वत से प्राण त्यागे तथा वे तीसरे सनत्कुमार स्वर्ग में सात सागर की आयु धारक देव हुए। दोनों आत्मा ने शुभयोग से पण्डितमरण किया। हे राजन्! इस तरह आर्यावसु ब्राह्मण के दोनों पुत्र व्रतों के माहात्म्य से स्वर्ग के सुखों को भोगने लगे। जिस धर्म के प्रताप से दो ब्राह्मण स्वर्ग के देव हुए, उस धर्म का सेवन सज्जनों को सुख की सिद्धि के लिये सदा करना योग्य है।

तीसरा अध्याय

जम्बूस्वामी पूर्वभव-भावदेव भवदेव छठे स्वर्गगमन

कुबुद्धिरूपी अन्धकार के नाश के लिये सुमतिधारी सुमतिनाथ तीर्थंकर को वन्दना करता हूँ। पद्मकमल के समान रक्तवर्ण देहधारी, सूर्य के समान तेजस्वी श्री पद्मप्रभु भगवान को मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

देवगति से पतन

हे मगधराज! भावदेव भवदेव के जीवों ने तीसरे स्वर्ग में सुखसमुद्र में मगन होते हुए अपने सात सागर की आयु पूर्ण कर दी। एकदफे उन दोनों देवों के आभूषणों में लगी निर्मल मणियाँ अपने प्रकाश में उसी तरह मन्द दिखने लगीं जिस तरह रात्रि के अन्त में दीपक मन्द तेज भासते हैं। उनके वक्षस्थलों की मालाएँ मुरझाई हुई दिखने लगीं, मानों स्वर्ग की लक्ष्मी का वियोग होगा, इससे भय सहित शोच कर रही हैं। उनके विमानों के कल्पवृक्ष कांपने लगे। मानों तन के वियोगरूपी महान पवन से हिलते हुए घबड़ा रहे हैं। उनके शरीर की ज्योति भी मन्द पड़ गयी। ठीक है, जब पुण्यरूपी छत्र चला जाता है, तब छाया कैसे रह सकती है? इन दोनों के कुम्हलाए हुए शरीरों को देखकर मणियों की काँति जाती रही। ये दोनों दीन हो गये, इनकी दीनता को देखकर उनके सेवक देव भी दीन हो गये। जब वृक्ष हिलता है तब उसकी शाखाएँ क्या विशेष नहीं हिलती हैं? इन दोनों देवों ने जो जन्मभर सुख भोगा था, वही सब सुख इकट्ठा होकर दु:खरूप

में आ गया। इन दोनों देवों की ऐसी अवस्था देखकर उनके सम्बन्धी देव इनके शोक को दूर करने के लिये सुन्दर वचन कहने लगे—

हे धीर! धैर्य धारण करो। सोच करने से क्या फल! सर्व प्राणियों के जन्म, मरण, जरा, रोग, भय आते रहते हैं। यह साधारण विषय है कि जब देव आयु का क्षय होगा तब सर्व देवों का देवगति से पतन होगा। उस पतन को कोई एक क्षण भी रोक नहीं सकता है।

जहाँ नित्य प्रकाश होता है वही नित्य अन्धकार होता है, लोक में दोनों बातें प्रगट हैं। जब पुण्य का दीप बुझ जाता है, तब सर्व तरफ पापरूप अन्धेरा छा जाता है। जैसे स्वर्ग में पुण्य के उदय से निरन्तर रतिभाव होता है, वैसे ही पुण्य के क्षय होने पर अरति भाव या दु:खित भाव हो जाता है। पाप आताप के तपने से केवल शरीर के साथ तपने से केवल शरीर के साथ रहनेवाली माला ही नहीं मुरझा जाती है; किन्तु शरीर भी मुरझा जाता है। पहले हृदय काँपता है फिर कल्पवृक्ष काँपता है। पहले शरीर की शोभा गलती है फिर लज्जा के साथ शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है।

मरण निकट आने पर जो दु:ख देवों को होता है वैसा दु:ख नारकी को भी नहीं होता है। अब आप दोनों के सामने मरण का समय आ गया है। जिस सूर्य का उदय होता है उसका अस्त भी होता है। इसी तरह जिसका स्वर्ग में जन्म है, उसका मरण अवश्य है, इसी तरह इस शोक से कुगति में पतन होगा। आप आर्य हैं, सज्जन हैं, इस समय धर्म के पालन में वृद्धि करनी चाहिए। इस

तरह समझाये जाने पर उन बुद्धिमानों को धैर्य आ गया। वे दोनों सुखदातार जैन धर्म में अपना प्रेम करने लगे।

देवों ने अन्त में धर्मप्रभावना की

देवगति में देवों की इच्छा का निरोध नहीं होता है। ऐसा ही देव-पर्याय का स्वभाव है। इसलिए वे देव इन्द्रियों को रोककर व्रत लेने को समर्थ नहीं हैं। वे दोनों देव श्री जिनमन्दिर में जाकर श्री जिनबिम्बों की पूजा-भक्ति, भावों की शुद्धि के लिये करने लगे। आयु के अन्त समय में दोनों कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर सामधान चित्त होकर प्रतिमायोग के साथ आत्मध्यान में मगन हो गये। बड़े भाव से णमोकार मन्त्र का भय रहित हो स्मरण करने लगे। क्षणमात्र में प्राण त्याग दिये और उनका आत्मा अन्य भव को प्रयाण कर गया, शरीर अदृश्य हो गये-उड़ गये।

इस जम्बूद्वीप के महामेरु पर्वत के पूर्व विदेह में केवल चौथा काल रहता है, न पहला, दूसरा, तीसरा, न पाँचवाँ, छठा काल होता है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का परिवर्तन नहीं होता है। सदा ही तीर्थंकरों की उत्पत्ति होती है।

भावदेव भवदेव के जीव विदेह में

उनके चरणों के विहार से विदेह देश सदा पवित्र रहता है। चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र उस रमणीक देश में सदा ही हुआ करते हैं। सदा ही कर्मभूमि की रचना रहती है, देश धन-धान्य से पूर्ण होता है।

उस विदेह क्षेत्र में **पुष्कलावती** नाम का देश है, जहाँ इतने पास पास ग्राम हैं कि एक ग्राम से उड़कर मुर्गा दूसरे ग्राम में

चला जाता है। जगह-जगह धान्य से हरे-भरे खेत दिखलाई पड़ते हैं। जगह-जगह जहाँ कमलों के पूर्ण जल सहित सरोवर हैं। उन कमलपत्रों को देखकर स्त्रियों की आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी झीले हैं, जहाँ हंसों की ध्वनि होती है। मानों वे उन झीलों के यश ही गान करते हैं। जिस देश में ऐसे कूप हैं जिनसे खेत सींचने की नाली लगी हैं व बावड़ी ऐसी शोभती हैं मानों कमल के समान नेत्र हैं। वन वृक्षों के सघन हैं। बाजारों में जगह-जगह सम्पदाएँ हैं - अन्नादि के ढ़ेर हैं। स्वर्गपुरी के समान जहाँ ग्राम हैं। पुरुष बड़े सुन्दर व स्त्रियाँ उनसे भी अधिक सुन्दर हैं! वहाँ निरन्तर सुख रहता है। उस देश का वर्णन कौन विद्वान कर सकता है, मानों तीर्थंकरों के दर्शन के लिये स्वर्ग ही चलकर यहाँ आ गया है। इस देश में एक महान नगरी **पुंडरीकिणी** है, जो बारह योजन लम्बी व नौ योजन चौड़ी है। वहाँ की भूमि बागीचों की पंक्तियों से शोभायमान है। नगर के चारों तरफ खाई पाताल तक चली गयी है। नगर का कोट इतना ऊँचा है कि आकाश को स्पर्श करता है। उस नगर के श्रावक तथा साधु जैन धर्म में रत हैं। वे सब व्रतों को पालते हैं व तीर्थों की यात्रा करते हैं, जैसे झीलों में हंस कल्लोल करते हैं। कहा है—

जैन धर्मस्ता यत्र, श्रावका मुनयस्तथा।
रमन्ते व्रततीर्थेषु, मराला मानुसेष्विव॥37॥

जहाँ तपस्वी साधु सर्व परिग्रह के त्यागी भयरहित हैं, बाहरी उपवनों में बैठकर कठिन-कठिन तप करते हैं। जहाँ कितने ही भव्य जीवों को कर्मों के क्षय से सदा अविनाशी केवलज्ञान का लाभ हुआ करता है। कितने ही भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन की

प्राप्ति होती रहती है। मानो रत्नत्रय की उत्पत्ति के लिये वहाँ की भूमि रत्नगर्भा है, स्वर्गादि है। स्वर्गादि सुख की प्राप्ति के लिये वहाँ की भूमि श्रेणी के समान है।

इस पुण्डरीकिणी नगरी का राजा वज्रदन्त था। केवल उसके दाँत ही वज्र के समान नहीं थे, किन्तु सारा शरीर वज्रमयी था। अर्थात् वह वज्रऋषभनाराच संहनन का धारी था। शत्रु उसकी प्रतापरूपी अग्नि से जल जाते थे। इसलिए उसको दूर से देखकर भाग जाते थे। उसकी पट्टरानी यशोधना थी, जो काम के बाण के समान थी, बड़ी ही सुन्दर थी। भावदेव का जीव जो तीसरे स्वर्ग में देव हुआ, आयु के अन्त में वहाँ से चयकर इन दोनों के पुत्र हुआ। उसके जन्म से बन्धुओं को परम आनन्द की प्राप्ति हुई, इससे उसका नाम सागरचन्द्र रखा गया। वह चन्द्रमा की कला के समान दिन पर दिन बढ़ता जाता था। उसी देश में एक दूसरी महान वीतशोकापुरी थी, जहाँ की भीतें चन्द्रकान्त मणियों से निर्मापित थी। जहाँ की स्त्रियाँ उन भीतों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर सौत की भ्रान्ति से रतिकर्म से विमुख हो जाती थीं। जहाँ युवती स्त्रियाँ पतियों के साथ पर्वतों पर क्रीड़ा करती थीं व कभी लतागृहों में रमण करती थीं। कभी वे महिलाएँ पतियों के साथ जल के स्थानों पर जलकेलि करती थीं व कभी वे उपवन की गलियों में सैर करती थीं।

उस नगर में महापद्म नाम का बलवान चक्रवर्ती राजा था। जिसके प्रताप की कीर्ति तीन जगत में फैली हुई थी। वह नव निधि व चौदह रत्नों का स्वामी था। नौ निधियों के नाम हैं – महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, मुन्द, नील व खर्पा।

चौदह रत्नों के नाम हैं—1. सेनापति, 2. गृहपति, 3. पुरोहित, 4. गज, 5. घोड़ा, 6. सूत्रधार, 7. स्त्री, 8. चक्र, 9. छत्र, 10. चर्म, 11. मणि, 12. कामिनी, 13. खडग, 14. दण्ड।

वह भरतक्षेत्र के छहों खण्डों का अकेला स्वामी था। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा करते थे। छयानवें हजार स्त्रियों का वह वल्लभ था। जैसे कमलनियों के प्रफुल्लित करने को सूर्य होता, वैसे वह उन स्त्रियों को प्रसन्न रखता था। उस चक्रवर्ती की एक पत्नी का नाम **वनमाला** था। वह देवी रतिक्रम में दिव्य औषधि के समान थी।

इस बाला के गर्भ में भवदेव का जीव आया। शुभ दिवस नक्षत्र में उसका जन्म हुआ। चक्रवर्ती पुत्र के जन्म से प्रसन्न हुआ। जन्म का उत्सव किया। याचकों को उनकी इच्छानुकूल सुवर्णादि दिये। बाजों की ध्वनि से दिशाएँ बहरी हो गयी। मंगल गान होने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। भाट लोग गद्यपद्य रचना से यशगान करने लगे। पुष्प सुगन्ध से मिश्रित चन्दन से मानवों को चर्चित किया गया। पुत्र के मुख को देखकर चक्रवर्ती को ऐसा हर्ष हुआ जैसे धातुवादी वैद्य रसाथन का लाभ करके प्रसन्न होता है। चक्रवर्ती ने बन्धु वर्गों के साथ मिलकर उसका नाम 'शिवकुमार' रखा ? जैसा नाम था वैसा ही वह गुण रखता था। यह शिव वरने के लिये कुमार ही था।

वह बालक प्रतिदिन माता का दूध पानकर बढ़ता गया, जैसे बाल चन्द्रमा कला की बढ़ती जाती हैं। शिशुवय में केवल माता ही की गोद में नहीं रमता था, किन्तु बन्धुजन भी अपने हाथों से रमाते थे।

शिवकुमार विद्याभ्यास, विवाह व गृहीसुख

क्रम से शिवकुमार आठ वर्ष का हो गया। तब व्याकरण साहित्यादि शास्त्रों को अर्थ सहित पढ़ने लगा। शस्त्रविद्या सीखी, संगीत व नाटक भी सीखा। पृथ्वी की रक्षा करने को समर्थ वीर गुणधारी हो गया। चक्रवर्ती ने बड़े उत्सव के साथ उसका विवाह पाँच सौ कन्याओं के साथ किया। अब वह कुमार युवावय में अपने योद्धागण व मन्त्रियों के मध्य में ऐसा शोभता था, जैसे चन्द्रमा नक्षत्रों के मध्य में उनकी कान्ति को जीतता हुआ शोभता है। वह चक्रवर्ती का पुत्र कभी तो मित्रों के साथ गान व चर्चा करता था, कभी वाजित्र बजाता था, कभी वैद्यों के साथ, वीरों के साथ, ज्योतिषियों के साथ नाना विरोधी विषयों पर तर्कवाद करके आनन्द भोगता था।

कभी कवियों की मण्डली में कविता करता था, कभी नाटक खेलता था, कभी युवानों के साथ पर्वत पर क्रीड़ा करता था, कभी वन-उपवनों के मार्ग में घूमता था, कभी नदियों के तटों पर रमता था, कभी अपनी स्त्रियों के साथ सरोवर में जलक्रीड़ा करता था, कभी अपनी स्त्रियों के साथ रतिक्रीड़ा करता था, कोई कभी स्त्री अभिमान से रूठ जाती हो उसको मनाकर राजी करता था, कभी वह पवित्र जिनमन्दिर में जाकर भावों को शुद्ध करके जल, चन्दनादि सामग्री से जिनबिम्बों की पूजा करता था। कभी श्री गुरुओं के पास जाकर सुखकारी धर्म को सुनता था। इस प्रकार युवानी में शिवकुमार अपना समय हर्षपूर्वक बिताता था।

उधर पुण्डरीकिणीनगरी में भावदेव का जीव सागरचन्द्र भी भोग-समुद्र में मगन रहता था। एक दफे पुण्डरीकिणीनगर के

उद्यान में तीन गुप्तिधारी व चार ज्ञान से विभूषित त्रिगुप्ति नाम के मुनिराज पधारे। तब नगर के सब लोग मुनि की वन्दना के लिये गये। ऐसा देखकर सागरचन्द्र भी मुनिराज के निकट गया, तब नगरनिवासियों ने विनय सहित धर्म का स्वरूप पूछा। मुनिराज ने उपदेश किया। अवसर पाकर सागरचन्द्र ने अपने पूर्वभव का हाल जानना चाहा। तब मुनिराज ने अवधिज्ञान के नेत्र से जानकर कहा—हे वत्स! तू महाभाग्यवान है, अपने पूर्वभव का चरित्र सुन—

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मगधदेश में वर्द्धमानपुर रमणीक था। वहाँ वेद के ज्ञाता दो विद्वान ब्राह्मणपुत्र रहते थे। एक तो तुम भावदेव थे, दूसरा तुम्हारा छोटा भाई भवदेव था। एक दिन सौधर्म मुनिराज के समक्ष भावदेव ने गृहारम्भ से विरक्त होकर तप स्वीकार कर लिया। किन्तु भवदेव कितने ही काल घर में ही रहा। भावदेव प्रमाद रहित हो तप करते थे। कुछ काल पीछे भावदेव उसी नगर में गये और धर्मानुराग से छोटे भाई को समझाने के लिये उसके घर गये। धर्मोपदेश देकर उसे गुरु के पास ले आये।

भवदेव ने शुद्ध-बुद्धि होने पर भी शल्यसहित लज्जा से गुरु के पास दीक्षा ले ली। जब किसी कारण से उसकी शल्य दूर हो गयी, तब वह मुनिराज के साथ-साथ चारित्र को पालता हुआ चारित्र का भण्डार हो गया। भावदेव भवदेव दोनों मुनिचारित्र को पालते हुए, अन्त में समाधिमरणपूर्वक प्राण त्यागकर तीसरे सनतकुमार स्वर्ग में देव हुए। वहाँ उपपाद शैय्या में अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण यौवनवान होकर उठे और सात-सागरपर्यन्त मनोहर भोगों

को बिना किसी विघ्नबाधा के भोगते रहे। आयु के अन्त में भावदेव के जीव तुम सो वज्रदन्त राजा के घर में सागरचन्द्र पैदा हुए। और भवदेवका जीव चक्रवर्ती के घर में शिवकुमार नाम का पुत्र हुआ है जो सूर्य के समान तेजस्वी है। तुम्हारे दर्शन मात्र से उसको अपने पूर्वभव का स्मरण हो जाएगा और वह संसार शरीर भोगों से विरक्त हो जाएगा।

इस तरह कुमार ने मुनिराज से अपने पूर्वभव सुने। संसार को असार जानकर अपना मन धर्मसाधना में तत्पर कर दिया। वह विचारने लगा कि इस जगत में सर्व ही प्राणी जन्म, मरण, जरा के स्थान हैं। इस जगत के भोगों में कुछ सार नहीं है, सार यदि कुछ है तो वह मुक्ति के सुख को देनेवाला दयामई जैनधर्म है। उसीधर्म की सेवा से इन्द्रियों के व कषायों के मद को दमन किया जा सकता है। जो कोई आत्मिक सुख को चाहता है, उसे इसी जैन धर्म का सेवन करना चाहिए। कहा है—

सारोऽस्त्य दयाधर्मो जैनो मुक्तिसुखप्रदः।
स चेन्द्रियकषायाणां दुर्मदे दमनक्षमः ॥15॥

सागरचन्द्र का मुनि होना

इस तरह विद्वान सागरचन्द्र ने विचार कर श्री मुनिराज के पास जिनेन्द्र की मुनि दीक्षा धार ली। यह सुख-दुःख में, शत्रु-मित्र में, महल-मशान में, जीवन-मरण में समभाव का धारी हो गया, परम शान्त हो गया। बाह्य और आभ्यन्तर बारह प्रकार का तप बड़े यत्न से करने लगा। परीषह व उपसर्गों के पड़ने पर भी अपने मन को समाधि से चंचल न कर सका। ध्यान में स्थिर रहा। तप के साधन से उसको चारणऋद्धि सिद्धि हो गयी वह

श्रुतकेवली हो गया। एक दफे विहार करते हुए वे सागरचन्द्र मुनि वीतशोकापुरी में पधारे।

मध्याह्नकाल में (अर्थात् 9 से 11 के मध्य) ईर्यापथ की शुद्धि से वह नगर में विधिपूर्वक विनय से पारणा के लिये गये। वहाँ राजमहल के निकट किसी सेठ का घर था। उस सेठ ने शुद्ध भावों से आहार दिया। मुनिराज ने नवकोटि शुद्ध ग्रास को शान्तिपर्वूक ग्रहण किया। मन-वचन-काय से कृत कारित अनुमोदना सहित को नवकोटि शुद्ध कहते हैं।

मुनिराज ऋद्धिधारी थे। मुनिराज के माहात्म्य से दातार के पवित्र घर के आंगण में आकाश से रत्नों की वृष्टि हुई। इस बात को देखकर वहाँ के सर्व जन परस्पर बातें करने लगे। यह क्या हुआ, सबको बड़ा-बड़ा ही आश्चर्य हुआ। परस्पर वादविवाद करने पर बड़ा कोलाहल हुआ। शिवकुमार ने अपने महल में सब वृत्तान्त सुना! वह महल के ऊपर आया और आनन्द से कौतुकपूर्वक देखने लगा। मुनिराज का दर्शन करके चित्त में आश्चर्यपूर्वक विचारने लगा। अहो! मैंने किसी भव में इन मुनिराज का दर्शन किया है। पूर्व जन्म के संस्कार से मेरे मन में स्नेह भर गया है और बड़ा ही आह्लाद हो रहा है। इसलिए मैं जाऊँ और अपना संशय मिटाने के लिये मुनिराज से प्रश्न करूँ।

शिवकुमार को जातिस्मरण

ऐसा विचारता ही था कि इतने में उसको पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। उसी समय पूर्वजन्म का सब वृत्तान्त जानकर उसने यह निश्चयकर लिया कि यह मेरे पूर्वभव के बड़े भाई हैं। आप यह तपस्वी महामुनि हैं। इन्होंने ही कृपा करके मुझे धर्म में

स्थापित किया था। उस धर्मसाधन से पुण्य बाँधकर पुण्य के उदय से मैं परम्परा सुख को पाता रहा हूँ। मैंने तीसरे स्वर्ग में देव होकर महान भोग भोगे और अब सर्व सम्पदा से पूर्ण चक्रवर्ती के घर में जन्मा हूँ। यह मेरा सच्चा भाई है, इसलोक, परलोक का सुधारनेवाला है। इस तरह बुद्धिमान शिवकुमार ने पूर्वभव का सर्व वृत्तान्त स्मरण किया और उसी क्षण में मुनिराज के निकट आ गया। मुनिराज को देखकर शिवकुमार की आँखों में प्रेम के आँसू निकल आये। जैसे वह मुनिराज के पास गया, प्रेम के उत्साह के वेग में वह मूर्छित हो गया।

चक्रवर्ती ने जब यह सुना कि शिवकुमार को मूर्छा आ गयी है तब वह उसी क्षण आया और मोह से आँसू भरकर रोने लगा। और यह कहने लगा—हे पुत्र! तूने यह अपनी क्या अवस्था की है? इसका क्या कारण है? शीघ्र भयहारी वचन कह! क्या अपनी स्त्री के स्नेह से आतुर हो लता के समान श्वास ले लेकर काँप रहा है? क्या किसी स्त्री का नवीन अवलोकन किया है, जिसके संगम के लिये रुदन कर रहा है? क्या तुझे तरुणावस्था में कामभाव की तीव्रता हो गयी है, जिससे आतुर हो जल रहा है? क्या किसी स्त्री के वचनों को व उसके गुणों को स्मरण कर रहा है? इतने में सर्व नगर के मनुष्य आ गये। देखकर व्याकुलचित्त हो गये। दु:सह शोक पृथ्वी पर छा गया। सबने अन्न-पानी त्याग दिया। ठीक है, पुण्यवान पदार्थ को कोई हानि पहुँचती है तो सबको उद्वेग हो जाता है।

फिर किसी उपाय से चेतनता आ गयी, मूर्छा टल गयी। कुमार प्रात:काल के सूर्य के समान जागृत हो गया। सब लोग

पूछने लगे—हे कुमार! मूर्छा आने का क्या कारण है ? शीघ्र ही यथार्थ कहो जिससे सबको सुख हो, चिन्ता मिटे। तब शिवकुमार ने मन्त्री के पुत्र दृढ़रथ को जो उसका मित्र था, एकान्त में बुलाकर अपने मन का सब हाल वर्णन कर दिया। ठीक है, चिन्तारूपी गूढ़ रोग से दु:खी जीवों के लिये मित्र बड़ी भारी औषधि है, क्योंकि मित्र के पास योग्य व अयोग्य सर्व ही कह दिया जाता है। कहा है—

चिंतागूढ़गदार्तानां मित्रं स्यात्परमौषधम्।
यतो युक्तमयुक्तं वा सर्वं तत्र निवेद्यते॥125॥

शिवकुमार ने मित्र से अपना गूढ़ हाल कह दिया कि हे मित्र! मैं संसार के भोगों से भयभीत हुआ हूँ। मैं नाना योनियों के आवर्त से भरे हुए महा भयानक दुस्तर संसार-समुद्र से पार होना चाहता हूँ। उसके अभिप्राय को जानकर दृढ़रथ ने चक्रवर्ती को सर्व वृत्तान्त कह दिया कि महाराज! शिवकुमार तप करना चाहता है।

शिवकुमार को वैराग्य

हे महाराज! यह निकट भव्य है, शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, यह राज्य सम्पदा को अपने मन में तृण के समान गिनता है, यह आज बिल्कुल विरक्त चित्त है, सर्व भोगों से यह उदासीन है, इसका जरा भी मोह न धन में है न जीवन में है। यह अपने आत्मा के स्वरूप का ज्ञाता है, तत्त्वज्ञानी है, विद्वानों में श्रेष्ठ है। यह जैन यति के समान सर्व त्यागनेयोग्य व ग्रहण करनेयोग्य को जानता है। इसका मन मेरु पर्वत के समान निश्चल है, यह परम दृढ़ है।

किसी की शक्ति नहीं है जो रागरूपी पवन से इसके मन को डिगा सके। इसको इस समय पूर्व जन्म के संस्कार से वैराग्य हो गया है। इसका भाव सर्व जीवों की तरफ राग-द्वेष शल्य से रहित सम है, यह संशयरहित जिनदीक्षा लेना चाहता है।

चक्रवर्ती इन कठोर वज्र के घात के समान वचनों को सुनकर चित्त में अतिशय व्याकुल हो गया। इसका मोहित हृदय विंध गया। आँखों में से बलपूर्वक आँसुओं की धारा बह निकली। गद्गद् वचनों को दीन भाव से कहता हुआ रुदन करने लगा। मेरा बड़ा दुर्भाग्य है। मैंने विचार कुछ किया था, दैव के उदय से कुछ और ही हो रहा है। जैसे कमल के बीच में सुगन्ध की इच्छा से बैठा हुआ भ्रमर हाथी द्वारा कमल मुख में लेने पर प्राण खो बैठता है। वह कहने लगा—हे पुत्र! तुझको यह शिक्षा किसने दी है? तेरी यह बुद्धि विचारपूर्ण नहीं है। कहाँ तेरी बाल अवस्था व कहाँ यह महान मुनिपद की दीक्षा? यह कार्य असम्भव है, कभी नहीं हो सकता है। इसलिए हे पुत्र! इस साम्राज्य को ग्रहण करो जिसमें सर्व राजा सदा नमन करते हैं। देवों को भी दुर्लभ महाभोगों को भोगो।

शिवकुमार का उपदेश

इत्यादि पिता के वचनों को सुनकर उसने घर में रहना स्वीकार किया तथा कोमल वाणी से कहने लगा—हे तात! इस संसाररूपी वन में प्राणी कर्मों के उदय से चारों गतियों में भ्रमण करते रहते हैं। कहीं भी निश्चल नहीं रह सकते। कभी यह जीव नारकी होता है, फिर कभी पशु हो जाता है, फिर मनुष्य हो जाता है। कभी आयु के क्षय से मरके देव होता है। इसी तरह देव से नर व

तिर्यंच होता है। हे तात्! न कोई किसी का पुत्र है न कोई किसी का पिता है। जैसे समुद्र में तरंगें उठती व बैठती हैं वैसे इस संसार में प्राणी जन्मते व मरते हैं।

हे पिता! यह लक्ष्मी भी उत्तम वस्तु नहीं है। महा पुरुषों ने भोग करके इसे चंचला जान छोड़ दी है। यह लक्ष्मी वेश्या के समान चंचल है। एक को छोड़कर दूसरे के पास चली जाती है। इस लक्ष्मी का विश्वास क्षणमात्र भी नहीं करना चाहिए। यह ठगनी के समान फसानेवाली है, व अनेक दु:खों में पटकनेवाली है। इन्द्रियों के भोग सर्प के रमण समान शीघ्र ही प्राणों के हरनेवाले हैं। यह जवानी जिसे भोगों को भोगने का स्थान माना जाता है, स्वप्न के समान या इन्द्रजाल के समान बिला जाती है, ऐसा प्रत्यक्ष भी दिखता है तथा भूतकाल के ज्ञान का स्मरण भी इसे देखकर होता है। यदि यह राज्यलक्ष्मी उत्तम थी तो महान ऋषियों ने क्यों इसका त्याग किया? पूर्वकाल का चरित्र सुनाई पड़ता है कि पहले बड़े-बड़े ज्ञानी श्रीमान ऐश्वर्यवान हो गये हैं, उन्होंने सर्व परिग्रह व राज्य को त्यागकर मोक्ष के लिये तप स्वीकार किया था। हे तात! ये भोग भोगने योग्य नहीं हैं। ये वर्तमान में मधुर दिखते हैं, परन्तु इनका फल या विपाक कडुवा है। इन भोगों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म वही है, जहाँ अधर्म न हो, पद वही है जिसमें कोई आपत्ति न हो। ज्ञान वही है जहाँ फिर कोई अज्ञान न हो। सुख वही है जहाँ कोई दु:ख न हो।

भावार्थ—वीतराग विज्ञान धर्म है, मोक्षपद ही उत्तम पद है, केवलज्ञान ही श्रेष्ठ है, अतीन्द्रिय आत्मिक सुख ही सुख है।

कहा है —

स धर्मो यत्र ना धर्मस्तत्पदं यत्र नाग्रहः।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं तत्सुखं यत्र नासुखम्॥151॥

बुद्धिमान चक्रवर्ती ने इस तरह पुत्र के बोधप्रद वचनों को सुनकर पुत्र के मन की बात को ठीक-ठीक जान लिया। उसको निश्चित हो गया कि यह मेरा पुत्र संसार से भयभीत है, वैराग्य से पूर्ण है, यह अपना आत्महित चाहता है, यह अवश्य उग्र तप ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त करेगा, ऐसा जानकर भी मोह के उदय से चक्रवर्ती कहने लगा —

हे पुत्र! जैसी तुम्हारी दया सर्व प्राणियों पर है, वैसी दया मुझ पर भी करो। सौम्य! एक बुद्धिमानी की बात यह है कि जिससे तुम्हें तप की सिद्धि हो और मैं तुम्हें देखता भी रहूँ, इसलिए हे पुत्र! घर में रहकर इच्छानुसार कठिन-कठिन तप व्रत आदि अपनी शक्ति के अनुसार साधन करो।

शिवकुमार घर में ब्रह्मचारी

हे पुत्र! यदि मन में राग-द्वेष नहीं है तो वन में रहने से क्या? और यदि मन में राग-द्वेष है तो वन में रहने का क्लेश वृथा है। इत्यादि पिता के वचनों को सुनकर शिवकुमार का मन करुणाभाव से पूर्ण हो गया। वह कहने लगा—हे तात! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही मैं करूँगा। उस दिन से कुमार सर्व संघ से उदास हो एकान्त में घर में रहने लगा, ब्रह्मचर्य पालने लगा, एक वस्त्र ही रखा, मुनि के समान भावों से पूर्ण व्रत पालने लगा। यह रागियों के मध्य में रहता हुआ भी कमल पत्ते के समान

उनमें राग नहीं करता था। अहा! यह सब सम्यग्ज्ञान की महिमा है। महान् पुरुषों के लिये कोई बात दुर्लभ नहीं है। कहा है—

कुमारस्तद्धिनान्नूनं सर्वसंगपरांगमुखः।
ब्रह्मचार्यैकवस्त्रोऽपि मुनिवृत्तिष्ठते गृहे ॥160॥

अकामी कामिनां मध्ये स्थितो वारिजपत्रवत्।
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥161॥

कभी वह एक उपवास करके पारणा करता था, कभी दो दिन के पीछे, कभी एक पक्ष, कभी एक मास का उपवास करके आहार करता था। वह शुद्ध प्रासुक आहार, बहुधा जल व चावल लेता था। जिसमें कृत व कारित का दोष न हो ऐसा आहार दृढवर्म मित्र द्वारा भिक्षा से लाया हुआ ग्रहण करता था। (नोट - ऐसा मालूम होता है दृढवर्म मित्र भी क्षुल्लक हो गया था। वह भिक्षा से भोजन लाता था उसे ही दोनों ग्रहण करते थे। एक या अनेक घरों से लाया हुआ भोजन लेना क्षुल्लकों के लिये विधिरूप था।) कहा है—

प्रासुकं शुद्धमाहारं कृतकारितवर्जितम्।
आदत्तं भिक्षेयानीतं मित्रेण दृढवर्म्मणा ॥163॥

उस कुमार ने घर में रहते हुए भी तीव्र तप की अग्नि में काम, क्रोधादि को ऐसा जला दिया था कि ये भाग गये थे, फिर निकट नहीं आते थे। इस तरह शिवकुमार महात्मा ने पाप से भयभीत होकर चौठस हजार वर्ष 64000 वर्ष तप करते पूर्ण किये। फिर आयु का अन्त निकट देखकर वह नग्न दिगम्बर मुनि हो गया। उसने इन्द्रियों को जीतकर चार प्रकार के आहार का त्याग कर दिया। इस तप के करने से शुभोपयोग द्वारा बाँधे हुए

पुण्य के फल से वह छठ्ठे ब्रह्मात्तर स्वर्ग में अणिमादि गुणों से पूर्ण विद्युन्माली नाम का इन्द्र उत्पन्न हुआ। इसकी दश सागर की आयु हुई। अब उसके पास वे चार महादेवी विद्यमान हैं। वही विद्युन्माली यहाँ पर स्वर्ग में इन्द्र के समान शोभ रहा है। वह सम्यग्दृष्टि है। इस सम्यग्दर्शन के अतिशय से इसकी क्रान्ति मलीन नहीं हुई। (नोट-इससे सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टि देवों की ही माला मुरझाती है, शरीर की शोभा कम होती है, आभूषणों की चमक घटती है, परन्तु सम्यग्दृष्टि देवों की शोभा नहीं घटती है, क्योंकि उनके मन में वियोग का दु:ख व शोक नहीं होता है। सम्यक्त्वी को वस्तुस्वरूप के विचार से इष्ट वियोग का व मरण का शोक नहीं होता है।) कहा है—

सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन् राजते दिवि देवराट्।
नास्य कांतिरभूत्तुच्छा सम्यक्त्वस्यातिशायित: ॥169॥

सागरचन्द्र मुनि ने भी व्रत में तत्पर रहकर समाधिमरणपूर्वक शरीर छोड़ा। उसका जीव भी छट्ठे स्वर्ग में जाकर प्रतीन्द्र हुआ। वहाँ भी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी नाना प्रकार के सुख की इच्छापूर्वक बिना बाधा के दीर्घ काल तक भोग किया।

धर्म के फल से सुख होता है, उत्तम कुल होता है, धर्म से ही शील व चारित्र होता है। धर्म से ही सर्व सम्पदाएँ मिलती हैं, ऐसा जानकर हरएक बुद्धिमान को योग्य है कि वह प्रयत्न करके धर्मरूपी वृक्ष की सदा सेवा करे। कहा है—

धर्मात्सुखं कुलं शीलं धर्मात्सर्वा हि संपद:।
इति मत्वा सदा सेव्यो धर्मवृक्ष: प्रयत्नत: ॥172॥

चौथा अध्याय

जम्बूस्वामी का जन्म व बालक्रीड़ा

सर्व विघ्नों की शान्ति के लिये प्रकाशमान सुपार्श्वनाथ को वन्दना करता हूँ। तथा चन्द्रमा की ज्योति के समान निर्मल यश के धारी श्री चन्द्रप्रभ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

चार देवियों के पूर्वभव

श्रेणिक महाराज विनय पूर्वक गौतम गणधर को पूछने लगे कि इस विद्युन्माली देव की जो चार महादेवियाँ हैं, वे किस पुण्य से देवगति में जन्मी हैं, मेरे संशय निवारण के लिये इनके पूर्वभव वर्णन कीजिये। योगीश्वर विनय के आधीन हो जाते हैं, इसलिए श्री गौतमस्वामी ने उनका पूर्वभव कहना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे—हे श्रेणिक! इसी देश में चम्पापुरी नाम की नगरी थी, वहाँ धनवानों में मुख्य सुरसेन सेठ था। उसके चार स्त्रियाँ थीं। उनके नाम थे—जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व यशोमती। इन महिलाओं के साथ यह सेठ जब तक पुण्य का उदय रहा, बहुत काल तक सुख भोगता रहा। फिर तीव्र पाप के उदय से सेठ का शरीर रोगमई हो गया, एक साथ ही सर्व रोगों का संयोग हो गया। कास, श्वास, क्षय, जलोदर, भगंदर, गठिया आदि रोग प्रगट हो गये। जब शरीर में रोग बढ़ गये तब शरीर की धातुएँ विरोधरूप हो गयीं। उस सेठ के भीतर अशुभ वस्तुओं की तीव्र अभिलाषा पैदा हो गयी। रोगी होने से उसका ज्ञान भी मन्द हो गया। वह अपनी स्त्रियों को मुट्ठी से व लकड़ी से मारने लगा। वह दुर्बुद्धि

अकस्मात् भ्रान्तिवान हो गया। मस्तिष्क बिगड़ गया, खोटे दृष्ट वचन कहने लगा—तुम्हारी पास कोई जार पुरुष को खड़े देखा था। फिर कभी देखूँगा तो तुम्हारे नासादि को छेद डालूँगा व प्राण ले लूँगा। इत्यादि कर्णभेदी शस्त्र के समान कठोर वचन स्त्रियों को कहता था, पाप के उदय से रौद्रध्यानी हो गया।

वे चारों बहुत दु:खी हुईं अपने जीवन को धिक्कार युक्त मानने लगीं। एक दफे वे तीर्थयात्रा के लिये घर से वन में गयीं। वहाँ श्री वासपूज्यस्वामी का महान मन्दिर था, उसको देखकर भीतर जाकर श्री जिनबिम्बों के दर्शन करके मानने लगीं कि आज हमारा जन्म सफल हुआ है, आज हम कृतार्थ हुए। वहाँ मुनिराज विराजमान थे, उनके मुखारविंद से धर्म व धर्म का फल सुना व गृहस्थ श्रावक के व्रत ग्रहण किये। व्रत लेकर वे घर में लौट आयीं। इतने में महापापी सूरसेन का मरण हो गया।

तब चारों ने अपना सर्व धन धर्मबुद्धि से एक महान जिनमन्दिर बनाने में खर्च कर दिया। फिर वैराग्यवान होकर चारों ने गृह का त्याग करके आर्यिका के व्रत धारण कर लिये। शास्त्रानुसार उन्होंने तीव्र तप किया। अत: शुभ भावों से पुण्य बाँधकर उसी छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देवियाँ पैदा हुईं और इस विद्युन्माली देव की वे प्राणधारी महादेवियाँ हो गयीं।

श्रेणिक महाराज इस धर्मकथा को सुनकर बहुत ही प्रमुदित हुए। फिर मन में विचार किया कि एक और प्रश्न करें। स्वामी! आज आपने यह भी कहा था कि विद्युन्माली का जीवन जब मानव भव को ग्रहण करेगा तब विद्युच्चर नाम चोर भी उनके साथ तप ग्रहण करेगा। यह विद्युच्चर कौन है, उसका क्या है,

चोरी की आदत उसे कैसे पड़ी, फिर वह मुनि कैसे होगा, विद्वद्वर! कृपा करके इसका सब वृत्तान्त कहिये। मैं धर्मफल की प्राप्ति के लिये विस्तार सहित सुनना चाहता हूँ।

श्री महावीर तीर्थंकर के दयारूपी जल से पूर्ण समुद्र के समान गंभीर श्री गौतमस्वामी कहने लगे—हे श्रेणिक! धर्म का अद्‌भुत माहात्म्य है। तू श्रवण कर।

विद्युच्चर का वृत्तान्त

इसी मगधदेश में हस्तिनापुर नाम का महान नगर है, जो स्वर्गपुरी के समान है। वहाँ संवर नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी प्रियवादिनी काम की समान श्रीषेणा थी। उसका पुत्र विद्युच्चर पैदा हुआ। यह बहुत विद्वान हो गया। जैसे-जैसे कुमार अवस्था आती गयी यह अनेक विद्याओं को सीख गया। इसको जो कुछ भी विज्ञान सिखाया जाता था, जल्दी ही सीख लेता था। रात-दिन अभ्यास करने से कौन-सी विद्या है जो प्राप्त न हो? यह शस्त्र व शास्त्र सर्व विद्याओं में निपुण हो गया।

किसी एक दिन इसके भीतर पाप के उदय से यह खोटी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैंने चोरी करना नहीं सीखा, उसका भी अभ्यास करना चाहिए, ऐसा विचारकर वह एक रात्रि को अपने पिता के ही महल में धीरे-धीरे चोर की तरह गया। बड़ी बुद्धिमानी से बहुमूल्य रत्न उठा लिये। उन रत्नों का बड़ा भारी प्रकाश था। जब वह लौटने लग तब उसको किसी ने देख लिया। इस दर्शक ने सवेरा होते ही राजा के सामने कुमार की चोरी का वृत्तान्त कह दिया। सुनकर राजा ने उसे उसी समय बुलवाया। कर्मचारी दौड़कर उसको ले आये। वह वीर सुभट के समान धैर्य

के साथ आकर खड़ा हो गया। तब राजा ने मीठी वाणी से पुत्र को समझाया—

हे पुत्र! चोरी का काम बहुत बुरा है, तूने चोरी किसलिए की है ? यदि तू भोगों को भोगने की इच्छा करता है तो मेरी क्या हानि है। तू अपनी स्त्रियों के साथ इच्छित भोगों को भोग। जो वस्तु कहीं नहीं मिलेगी वह मेरे घर में सुलभ हैं। जो तुझे चाहिए सो ग्रहण कर ले परन्तु इस चोरी कर्म को तू न कर। यह बहुत निन्द्य है, इसलोक व परलोक में दु:खदाई है, सर्व सन्ताप का कारण है, तू महान विवेकी है, ऐसे काम को कभी न कर।

पिता के ऐसे उपदेशप्रद वचनों को सुनकर भी उसको शान्ति न मिली। जैसे उदर से पीड़ित प्राणी को शक्करादि मिष्ट पदार्थ नहीं सुहाते हैं। वह दुष्ट चोरी का प्रेमी अपने पिता को उत्तर में कहने लगा कि महाराज! चोरी कर्म व राज्य में बहुत बड़ा भेद है। राज्य में लक्ष्मी परिमित होती है। चोरी करने से अपरिमित का लाभ होता है। इन दोनों में समानता नहीं है। इसलिए चोरी के गुण को ग्रहण करना उचित है। कर्तव्य अकर्तव्य का विचार न करके पिता के वचन का उल्लंघन कर वह दुष्ट घर से उदास होकर राजगृही नगर को चल दिया। वहाँ कामलता नाम की वेश्या बहुत सुन्दर कामभाव से पूर्ण थी, उसके रूप में आसक्त हो गया। उस वेश्या के साथ इच्छित भोगों को भोगने लगा। वह कामी विद्युच्चर चोर रात दिन चोरी करके जो धन लाता है, वह सब वेश्या को दे देता है।

जम्बूस्वामी जन्मस्थान

भगवान गौतम के मुख से इस प्रश्न के उत्तर को सुनकर

राजा श्रेणिक बहुत सन्तुष्ट हुआ। फिर प्रश्न करने लगा—हे भगवान! आपने जो इस विद्युन्माली देव की कथा कही थी, उसमें कहा था कि आज से सातवें दिन वह इस पृथ्वीतल पर जन्मेगा, सो यह किस पुण्यवान के घर को जन्म से भूषित करेगा? जगत के स्वामी ने उसके प्रश्न का यह समाधान किया कि इसी राजगृह नगर में धनसंपन्न अर्हदास सेठ रहता है जो जैनधर्म में तत्पर है। उसकी स्त्री स्वरूपवान जिनमती नाम की है, जो धर्म की मूर्ति है, महान साध्वी हैं, जैसे उत्तम विद्या मानव को सुखदाई होती है, वैसे वह सुख को देनेवाली है। कहा है—

तस्य भार्या सुरूपाद्या नाम्ना जिनमती स्मृता।
धर्ममूर्तिर्महासाध्वी सद्विद्येव सुखावहा॥52॥

उस जिनमती के पवित्र गर्भ में पुण्योदय से यह अवतार धारण करेगा। यह सम्यग्दर्शन से पवित्र है। इसका आत्मा अवश्य मोक्षरूपी स्त्री का स्वामी होगा।

वहाँ कोई यक्ष बैठा था, वह यह सुनकर आनन्द से पूर्ण हो नृत्य करने लग। हे स्वामी! ऐ केवलज्ञानी! हे नाथ! जय हो, जय हो, आपके प्रसाद से मैं कृतार्थ हो गया। मैंने पुण्य का फल पा लिया। उसका कुल धन्य है, प्रशंसनीय है, जहाँ केवली का जन्म हो, उस कुल में सूर्य के समान केवलज्ञान से वह प्रकाशित होगा। वही पवित्र देश है, वही शुभ नगर है, वही कुल पवित्र है, वही घर पावन है, जहाँ सदा धर्म का प्रवाह रहता है। कहा है—

स एव पाबन्ते देशस्तदेव नगरं शुभम्।
तत्कुलं तद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरम्परा॥57॥

जम्बूस्वामी कुलकथा

वह यक्ष अपने आसन पर खड़ा-खड़ा बारबार हर्ष से नृत्य करने लगा। तब श्रेणिक ने पूछा—यह यक्ष क्यों नृत्य कर रहा है? गौतम गणेशराज श्रेणिक से कहने लगे—इसी नगर में एक श्रेष्ठ वणिक पुत्र था, जिसका नाम धनदत्त था जो सौम्यपरिणामी था व धन में कुबेर के समान था। उसकी स्त्री सुन्दर गोत्रमती नाम की थी, उसके दो पुत्र थे। बड़े का नाम अर्हदास जो बहुत बुद्धिमान था। छोटे का नाम जिनदास था, जो चंचल बुद्धि था। पाप के तीव्र उदय से वह सब जुआ आदि व्यसनों में फँस गया। वह दुर्बुद्धि माँस खाने लगा, मदिरा पीने लगा, वेश्या-सेवन करने लगा। पापी जुआ में भी रमने लगा। उसका सर्व कर्म निन्दनीय हो गया। इधर-उधर दु:खदाई चोरी का कर्म भी करने लगा। अधिक क्या कहा जावे। उसका आचरण सर्व बिगड़ गया। जगत में प्रसिद्ध है कि जुए के व्यसन में फँसकर युधिष्ठिर आदि पाण्डुपुत्रों ने राज्यभ्रष्ट होकर महान दु:खों को भोगा, परन्तु जो कोई इन सर्व ही व्यसनों में लोलुप होगा वह इस लोक में आज व कल अवश्य दु:ख भोगेगा व परलोक में भी पाप के फल से दु:ख सहन करेगा। कहा है —

अहो प्रसिद्धिर्लोकेऽस्मिन् द्यूताद्धर्मसुतादय:।
एकस्माद्व्यसनान्नष्टा: प्राप्ता दु:खपरम्पराम्॥66॥

अथं सर्वै: समग्रैस्तु व्यसनैर्लोलुमानस:।
अद्य श्वो वा परश्वश्च ध्रुवं दु:खे पतिष्यति॥67॥

इस तरह नगर के लोग परस्पर बातें करते थे। उसके जातिवाले उसको शिक्षा देने के लिये दुर्वचन भी कहते थे।

इस तरह एक दिन जुआ खेलते-खेलते जिनदास इतना सुवर्ण हार गया जितना उसके घर में भी नहीं था। तब जीतनेवाले जुआरी ने जिनदास को पकड़कर कहा कि शीघ्र मुझे जितना तूने द्रव्य हारा है, दे। जिनदास तीव्र धन की हार से आकुलित हो बिना विचार किये हुए कठोर वचनों से उत्तर देने लगा—तू चाहे तो वध बन्धन आदि करे, मेरे पास आज इतना सुवर्ण देने को नहीं है। मैं अपने प्राणों का अन्त होने पर भी नहीं दूँगा। जिनदास के वचन सुनकर वह क्षत्रिय जुआरी क्रोध में भर गया। कहने लगा कि मैं आज ही सर्व सुवर्ण लूँगा नहीं तो तेरे प्राण लूँगा। तू ठीक समझ दूसरी गति नहीं हो सकती। परस्पर लड़ाई-झगड़ा होने लगा। बड़ा भारी कोलाहल हो गया।

दुष्ट क्षत्रिय ने क्रोध के के आवेश में आकर अपनी तलवार से जिनदास को मारा। वह जिनदास मूर्छा खाकर गिर पड़ा। तब वह क्षत्रिय अपने को अपराधी समझकर मारा गया। इतने में नगर के बहुत लोग वहाँ देखने को आ गये। जिनदास का भाई अर्हदास भी आया। भाई को मूर्छित देखकर व्याकुलचित्त हो उसे यत्नपूर्वक अपने घर में ले गया। शस्त्र वैद्य को बुलाकर उसकी चिकित्सा करायी परन्तु जिनदास का समाधान नहीं हुआ। ठीक है, जब दुष्ट कर्मरूपी शत्रु का उदय होता है, तब सब उपाय वृथा जाते हैं। जैसे दुर्जन पुरुष के साथ किया हुआ उपकार उसके स्वभाव से वृथा ही होता है। कहा है—

उदिते दुष्टकर्मारौ प्रतिकारो वृथाखिलः।
निसर्गतः खले पुंसि कृताप्युपकृतियथा॥79॥

उसको ज्ञान देने के लिये अर्हदास जैन सूत्र के अनुसार धर्म भरी वाणी कहने लगा हे भ्रात! इस संसाररूपी समुद्र में मिथ्यादृष्टि

दुष्ट जीव सदा भ्रमण किया करता है व महादुखों को सहता है। इस जीव ने संसार में अनंत बार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव— इन पाँच परिवर्तनों को किया है। पापबन्ध के कारण भाव मिथ्यात्व, विषयभोग, कषाय व मन-वचन-काय के योग हैं, इनमें भी जुआ आदि के व्यसन तो दोनों लोक में निन्दनीय हैं। जुआ आदि के व्यसनों में जो फँस जाते हैं, उनको इस लोक में भी वध बन्धन आदि कष्ट होता है व परलोक में महान असाताकर्म उदय में आकर तीव्र दु:ख होता है। हे भाई! तूने प्रत्यक्ष ही धूत कर्म का महान खोटा फल प्राप्त कर लिया। यह भी निश्चय से जान, तू परलोक में भी तीव्र दु:ख पावेगा। अर्हदास के वचनों को सुनने से जिनदास का मन पापों से भयभीत हो गया। रोगातुर होने पर भी उसकी रुचि धर्मामृत पीने में हो गयी।

तब जिनदास ने अर्हदास की तरफ देखकर कहा—वास्तव में मैंने बहुत खोटे काम किये हैं। मैंने व्यसनों के समुद्र में मग्न होकर अपना समय वृथा खो दिया है। हे भाई! मैं अपराधी हूँ, मेरा तू उद्धार कर। इस लोक में जैसा तू मेरा सच्चा हितैषी बन्धु है वैसा हे धर्मात्मा! तू मेरी परलोक में भी सहायता कर। अर्हदास भी जिनदास के करुणापूर्ण वचन सुनकर शुद्ध बुद्धि धारकर उसको धर्मसाधन हो वैसा उपाय करने लगा। अर्हदास के उपदेश से जिनदास ने श्रावक के अणुव्रत ग्रहण कर लिये और तब समाधिमरण से मर के पुण्य के उदय से यह यक्ष हुआ है। इसीलिए हे राजन्! मेरे वाक्यों को सुनकर यह नाच रहा है। उसके मन में बड़ा हर्ष है कि मेरे वंश में अन्तिम केवली का जन्म होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह विद्युन्मालीदेव का

जीव अर्हदास सेठ का पुत्र जन्मेगा और यही जम्बूस्वामी नाम का धारी अन्तिम केवली होगा।

हे राजन! जम्बूस्वामी की कथा बड़े-बड़े मुनीन्द्र सत्धर्म की प्राप्ति के हेतु वर्णन करेंगे। श्रेणिक महाराज इस प्रकार भगवान की दिव्यवाणी सुनकर व अपने इच्छित प्रश्नों का समाधान करके बहुत प्रसन्न हुआ। और घर लौटने की इच्छा करके श्री जिनेन्द्र की स्तुति गद्य व पद्य में करने लगा। भगवत के गुणों का स्मरण किया। स्तुति के कुछ वाक्य ये हैं हे देव महादेव! जय हो! केवलज्ञान नेत्र के धारी भगवान की जय हो। आप दया के सागर हैं, सर्व प्राणी मात्र के हित कर्तार हैं। हे देवाधिदेव! आपकी जय हो। आपने घातियाकर्मों का नाश कर दिया है। आपने मोहरूपी योद्धा को जीतकर वीरत्व प्रगट किया है, आप धर्मरूपी तीर्थ के प्रवर्तन करनेवाले हो। हे स्वामी! आपके समान तीन जगत में कोई शरण नहीं है। हे विभु! जब तक मैं आपके समान न हो जाऊँ, तब तक मुझे आपकी शरण प्राप्त हो। कहा है—

यथा त्वं शरणं स्वामिन्नस्ति त्रिजगतामपि।
तथा मे शरणं भूयाद्यावत्स्यां त्वत्समो विभो ॥98॥

इस तरह स्तुति करके श्रेणिक राजा अपने नगर में प्रयाण कर गया। घर में रहते हुए वह श्रेणिक जिनेन्द्र कथित धर्म का पालन करने लगा। यह जिनधर्म, भावकर्म और द्रव्यकर्म का हरनेवाला है।

जम्बूस्वामी का जन्म

राजा श्रेणिक को राज्य करते हुए कुछ काल बीत गया, तब श्री जम्बूस्वामी का जन्म हुआ था। अर्हदास सेठ राज्यश्रेष्ठी थे। राज्यकार्य में मुख्य थे। उनकी स्त्री जिनमती सीता के समान

शीलवती, गुणवती व रूपवती थी। दोनों दम्पति परस्पर स्नेह से भीगे हुए सुख से काल बिताते थे। यद्यपि वे गृहस्थ के न्यायपूर्वक भोग करते थे, तथापि रात-दिन जैनधर्म में दत्तचित्त थे।

एक रात्रि को जिनमती सुख से शयन कर रही थी, उसने रात्रि के पिछले पहर कुछ स्वप्न देखे। एक स्वप्न यह देखा कि जामुन का वृक्ष है, फलों से भरा हुआ है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, देखने से बड़ा प्रिय दिखता है। दूसरा स्वप्न देखा कि अग्नि की ज्वाला जल रही है, परन्तु धूम नहीं निकलता है। तीसरा स्वप्न चावल का खेत फूला हुआ हराभरा देखा। चौथा स्वप्न कमल सहित सरोबर देखा। पाँचवाँ स्वप्न तरंग सहित समुद्र देखा तो प्रात: काल उठकर अपने पति से स्वप्नों का हाल जानकर अर्हदास को बहुत आनन्द हुआ। जैसे मेघों को देखकर मोरनी शब्द करती हुई नाचती हैं वैसे ही सेठ का मन हर्ष से पूर्ण हो गया, वह उसी समय उठा और स्त्री सहित श्री जिन मन्दिर को गया। बारम्बार नमस्कार किया। श्री जिनेन्द्रों की भले भावों से पूजा की। फिर वह वैश्वराज मुनिश्वरों को प्रणाम करके स्वप्नों का फल पूछने लगा —

हे स्वामी! आज रात को पिछले भाग में मेरी स्त्री ने कुछ शुभ स्वप्न देखे हैं, आप ज्ञाननेत्रधारी हैं। शास्त्रानुसार उनका क्या फल है सो कहिये। तब मुनिराज ने कुछ देर विचार किया फिर कहने लगे—जम्बूवृक्ष देखने का फल यह है कि कामदेव समान तुम्हारे पुत्र होगा। प्रज्वलित अग्नि के देखने का फल यह है कि वह कर्मरूपी ईंधन को जलाएगा। खेत के धान्य देखने का फल यह है कि वह लक्ष्मीवान् होगा। कमलसहित सरोवर देखने

का फल यह है कि वह भव्य जीवों के पापरूपी दाह के सन्ताप को शान्त करनेवाला होगा। हे श्रेष्ठी! समुद्र के दर्शन का फल यह है कि वह संसार समुद्र के पार पहुँचेगा और भव्यजीवों को सुख-प्राप्ति कराने के लिये धर्मामृत की वर्षा करेगा।

धर्म का फल सुनकर सेठ को बहुत आनन्द हुआ। मुनिवृन्दों को मन, वचन, काय से नमस्कार करके वह अपने घर आया। तब ही विद्युन्माली देव का जीव जिनमती के गर्भ में पूर्व पुण्य के फल से आ गया था। गर्भावास होने पर जिनमती का शरीर शिथिल रहने लगा। कोमल अंग में पसीना आने लगा, कुच का अग्रभाग नीला हो गया, स्तन व कपोल सफेद हो गये। वह शिथिलता से मिष्ट वचन करती थी, तो भी जैसे रत्नगर्भा पृथ्वी शोभती है, वैसी शोभती थी।

शिशु के गर्भ में रहते हुए त्रिवली भंग हो गयी, परन्तु चरमशरीरी जीव को उसके उदर में रहते हुए कोई बाधा नहीं हुई। गर्भवती जिनमती को सुखदाई शुभ दोहला उत्पन्न हुआ कि मैं देव, शास्त्र, गुरु की उत्तम भावसहित पूजा करूँ, जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा कराऊँ, जीर्ण चैत्यालयों का उद्धार करूँ, चार प्रकार दान देऊँ। उसकी गाढ़ श्रद्धा पुण्य कर्म के लिये हो गयी।

सेठजी ने दोहले को जानकर हर्षित मन से उनकी सर्व इच्छा पूर्ण की, बड़े उत्साह से धन खर्च किया। उसके मन में पुत्र के दर्शन की तीव्र इच्छा थी। नौ मास पूर्ण होने पर जिनमती ने सुख से महा तेजस्वी, महापवित्र पुत्र को जन्म दिया, मानो पूर्व दिशा ने सूर्य का उदय कर दिया। फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष में पूर्णिमा के शुभ दिन में प्रात:काल जम्बूस्वामी का जन्म हुआ।

आनन्द से गद्‌गद सेठ ने बन्धुवर्ग व नगरवासियों को बुलाकर जन्म का बड़ा उत्सव किया। स्वर्ग में दुन्दुभि बाजे बजे। स्वर्ग से पुष्पों की वर्षा हुई। ठण्डी, पुष्परज से सुगन्धित पवन चलने लगी। सर्व तरफ जय-जयकार ध्वनि होने लगी, जो कानों को प्रिय लगती थी व परमानन्द होता था। मंगल गीत को जाननेवाली स्त्रियाँ गीत गाने लगीं। सुंदर भृकुटी रखनेवाली व कुमकुम के समान लाल साड़ी पहने हुई भामिनियें मंगल नृत्य हर्ष से करने लगीं। सेठ के घर का आँगन सुन्दर पताकाओं से व मणिमाणिक्य की शोभा से जिस शोभा को प्राप्त हुआ, उसका वर्णन कोई महान कवि भी नहीं कर सकता है।

सेठ ने इतना दान दिया कि उसके दान का क्षय नहीं हुआ, धन के लेनेवाले की कमी थी, उसको धन देने में कमी नहीं थी। इस तरह पुण्यात्मा सुन्दर जम्बूकुमार को बड़े सुख में व लाड-प्यार से पाला जाने लगा। माता-पिता ने बन्धुओं की सम्मति से जम्बूकुमार नाम रखा। सेठजी ने उसके पोषण के लिये धायें नियत कर दी थीं, जो बालक को स्नान करावे, शृंगार करावे, क्रीड़ा करावे। जब वह मुस्कराता हुआ मणि की भूमि को स्पर्श करता था तब माता-पिता उसकी अद्‌भुत चेष्टा देखकर मुदित हो जाते थे। उसका रूप देखकर जगत के लोगों को बड़ा आनन्द होता था। उसका शिशुपना चन्द्रमा की कला के समान बढ़ने लगा।

जम्बूस्वामी की शिशु वय

इसके मुखरूपी चन्द्रमा की कान्ति को बढ़ती हुई देखकर माता-पिता का सन्तोषरूपी समुद्र बढ़ता जाता था। जब यह मुख

से हँसता था, तब ऐसा झलकता था कि इसका मुख सरस्वती का सिंहासन है व लक्ष्मी का घर है या कीर्तिरूपी बेल का विकास है। जब वह रक्त कमलों की शोभा को जीत लेता था। अपने समान वयधारी शिशुओं के साथ वह रत्न धूलि में क्रीड़ा करता हुआ माता-पिता को प्रसन्न करता था। वह बालचन्द्र के समान था। अपने उत्तम गुणों से प्रजा को आनन्द लाता था। उसके अंग में निर्मल यश व्याप्त था। बालावस्था उल्लंघन करके जब वह कुमारवय में आ गया तब उसका तेज इन्द्रों से पूजनीय हो गया था। शरीर सुन्दर था, मीठी बोली थी, उसका दर्शन प्रिय था। जब वह मुस्कराकर बातें करता था तब जगत के प्राणी प्रेम से पूर्ण हो जाते थे। वह अब सर्व कलाओं में पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान पूर्ण हो गया। इस पुण्यवान को जगत की सर्व विद्याएँ स्वयं पूर्वजन्म के अभ्यास से स्मरण हो गयीं। शिक्षा बिना ही वह सब कलाओं में कुशल था, सब विद्याओं में चतुर था, सर्व क्रियाओं में दक्ष था। वह बृहस्पति के समान सर्व शास्त्र का ज्ञाता हो गया। जैसे शरीर बढ़ता जाता था, गुण बढ़ते जाते थे। यह चरम शरीरी था। इसमें विशेष आरोग्य, सौभाग्य व सौन्दर्य था।

जम्बूस्वामी की कुमार क्रीड़ा

कभी-कभी यह सुन्दर लिपि लिखता व लिखाता था। गाना बजाना स्वयं करता व कराता था। मित्रों के साथ छंद अलंकार के साथ वार्तालाप करता था। चित्र खींचने आदि की कला का जाननेवाला था। कभी-कभी कवियों के साथ काव्य चर्चा करता था। कभी-कभी वाद करनेवालों के साथ किसी-किसी विषय पर वाद करता था। कभी गायन मण्डली में गीत गाता व सुनता

था। कभी बाजा बजानेवालों की गोष्ठी करता था। कभी वीणा की ध्वनि सुनता व सुनाता था। कभी करताल ध्वनि के साथ नृत्यकारों का नृत्य कराता था। कभी गांधर्व के द्वारा गाये हुए गंगाजल के समान अपने निर्मल यश को सुनता था।

कभी वापिकाओं में कुमारों के साथ जाकर जलक्रीड़ा करता था, कभी पिचकारियों में जल भरकर जल छिड़कता था। कभी नन्दनवन के समान वनों में जाकर कुमारों के साथ वनक्रीड़ा करता था। इस तरह आठ वर्ष का होने पर भी सर्व प्रकार क्रीड़ा व विनोद में निपुण था।

वह जम्बूकुमार देवतुल्य था, इन्द्रादि देवों से पूजनीय था, सर्व गुणरूपी रत्नों की खान था, पवित्र मूर्ति था, पुण्यमयी अपने घर में कुमारों के साथ इच्छित क्रीड़ाओं को करता हुआ रहता था। वह कुमार राजकुमारों के साथ क्रीड़ा करता हुआ चन्द्रमा के समान शोभता था। उसकी छाती पर हार ऐसा झलकता था, मानों लक्ष्मीदेवी के झूलने का हिंडोला है, जिसके मोती तारों की चमक के समान चमकते थे।

जिस धर्मरूपी महान वृक्ष के फलरूप पुण्य के उदय से स्वर्ग में देव महान सुख को भोगते हैं, जिसके फलरूप पुण्य के उदय से महान पुरुष तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि उत्पन्न होते हैं, उस धर्मरूपी महावृक्ष की सेवा यत्नपूर्वक अन्य सत्पुरुषों को भी करना योग्य है।

पाँचवाँ-अध्याय

जम्बूकुमार की वसन्तक्रीड़ा व हाथी को वश करना

यथार्थ विधि को बतानेवाले व धर्मतीर्थ के कर्ता श्री सुविधि या पुष्पदन्तनाथ को तथा शान्तिप्रद वाणी के कर्ता श्री शीतलनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ।

जम्बूकुमार का रूप

जम्बूकुमार का शरीर यौवनपूर्ण व मनोहर दिखता था, जैसे शरद की पूर्णिमा का चन्द्रमा ही हो। शरीर सुवर्ण रंग का था कामदेव के समान रूपवान था, रोगरहित था, शरीर में सुगन्ध आती थी, शरीर में 1008 लक्षण थे। वज्रवृषभ नाराच संहनन था। समचतुर संस्थान था। वायु, पित्त, कफ सम्बन्धी कोई रोग नहीं थे। शरीर परमौदारिक शोभनीय था। उसके रूप लावण्य व यौवन को देखकर मानवों के नेत्र रूपी भ्रमर कहीं और जगह नहीं रमण करते।

उसके कामदेव समानरूप को देखकर नगर की स्त्रियाँ काम की पीड़ा से आकुलित थीं। नगर की स्त्रियाँ उनके रूप को बारबार देखना चाहती थीं, रूप को न देखकर आकुल होती थीं, कोई-कोई स्त्री, रूप देखकर पागल सी हो जाती थी, कोई-कोई लम्बे श्वास लेने लगती थी। कोई पण्डिता स्त्री कुमार के रूप को स्मरण कर चित्रपट के समान देखती रहती थी। कोई-कोई स्त्री घर के कार्य को छोड़कर झरोखे में आकर बैठती थी कि कुमार का रूप देखने में आ जावे। कोई किसी बहाने से घर से

बाहर जाकर जहाँ जम्बूकुमार का आना-जाना रहता था उन बड़ी-बड़ी सड़कों पर घूमती रहती थी। कोई स्त्री मार्ग में देर तक कुमार का दर्शन न पाकर घर के काम की चिंता से आतुर हो लौट जाती थी। कोई-कोई तरुणी उसे देखकर ऐसा निदान करती थी कि अन्य जन्म में मुझे ऐसा रूपवान पति होवे। उस कुमार के रूप को देखने से स्त्रियों की जो दशा होती थी, उसे कवि वर्णन नहीं कर सकता है। वास्तव में एक पुत्र अच्छा है, यदि वह गुणवान हो व अपने कुल का प्रकाश करनेवाला हो। कुल को कलंकित करनेवाले हजारों पुत्रों से क्या लाभ? कहा है—

सुपुत्रों हि वरं चैको स्वात्स्वकुलदीपकः।
न च भद्रं कुपुत्राणां सहस्राणि कुलद्विपान्॥20॥

कुमार के गुणों की सम्पत्ति को सुनकर कितने ही सेठों का मन होता था कि हम अपनी कन्या उसे ब्याहें। उसी नगर में एक सेठ जिनभक्त **सागरदत्त** रहता था, उसकी स्त्री सुन्दर पद्मावती थी, उसकी एक कन्या **पद्मश्री** थी, जिसका मुख कमल के समान प्रफुल्लित था, जो बड़ी सुन्दरी थी, व नवयौवन पूर्ण थी।

वाणिज्यकारकों में श्रेष्ठ दूसरा सेठ **धनदत्त** था, उसकी सेठानी सुन्दरमुखी **कनकमाला** थी, इसकी पुत्री **कनकश्री** थी। जिसका स्वर कोयल के समान था, तप्तायमान सोने के समान शरीर की आभा थी, कर्ण तक लम्बे नेत्र थे।

तीसरा एक धनवान व्यापार-शिरोमणि वैश्रवण सेठ था। भार्या विनयवती **विनयमाला** थी, उसकी कन्या **रूपश्री** थी, जो पूर्ण मनोहर स्त्री, ये चारों ही कन्याएँ नवयौवना थीं।

जम्बूकुमार की सगाई

चारों ही सेठ अपनी-अपनी कन्याओं के लिये योग्य वर की चिन्ता में रहते थे? सर्व ने यही सम्पत्ति पक्की की कि हम अपनी कन्याएँ जम्बूकुमार को विवाहेंगे। तब चारों ही अर्हदास सेठ के घर पर आये और अपने मन का भाव प्रगट किया।

हे श्रेष्ठी! आप धन्य हैं, तीन लोक में माननीय हैं, आपके घर में जगत को पवित्र करनेवाला महापवित्र पुत्र श्री जम्बूकुमार है, वह जगत में विख्यात है। इन चारों की प्रार्थना को आप स्वीकार करें। हमें अपनी कन्याएँ आपके पुत्र को उचित जान के देना चाहते हैं। जम्बूस्वामी उनके भर्तार होनेयोग्य हैं। इससे परस्पर प्रीति बढ़ेगी। हमारा आपसे मैत्रीभाव है ही। हम आज्ञाकारी सेवक के समान हैं।

उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अर्हदास सेठ मुस्करा दिये, बहुत प्रसन्न हुए। भीतर जाकर जिनमती से कहा। जिनमती इस बात को सुनकर बहुत हर्षित हुई और इस बात को स्वीकार किया। पुत्र के विवाह के उत्सव की इच्छा स्त्रियों को स्वभाव से ही होती है।

जिनमती की सम्मति भी पाकर अर्हदास सेठ ने उन चारों सेठों से कह दिया कि आपकी इच्छानुसार ही कार्य होगा। अक्षय तृतीया (वैशाख सुदी तीज) का दिवस विवाह के लिये नियत हो गया। सेठ ने उन चारों को बहुत सत्कार किया, फिर वे अपने घर चले गये। उस दिन से अर्हदास सेठ के व उन चारों सेठों के घरों में मंगलगीत हुआ करते थे। वे विवाह के लिये सामग्री एकत्र करते थे। घरों में उत्तम चित्र रचवाते थे, उन धन धान्य सुवर्णादि

वस्त्र, अलंकार, धन देकर खरीद करते थे। सबने अपने-अपने बन्धुवर्गों को निमन्त्रण कर दिया था। चारों सेठों को विवाह करने का बड़ा ही उत्साह था।

बसन्तऋतु का आगमन

इतने में ऋतुओं में शिरोमणि बसन्तराज का आगमन हुआ। वृक्षों के पुराने पत्ते गिर पड़े थे, नवीन पत्ते आ गये थे। नीले कमलपत्र के समान शोभते थे। फूलों के द्वारा वह बसन्तराज अपने यश को विस्तार रहा था। वनों में कोयलों के शब्द हो रहे थे, चारों तरफ सुगन्ध फैली हुई थी। मानो कामदेव ने मोहित करने को जाल ही बिछा दिया है। फूलों की गन्ध से खिंचकर भ्रमरों की पंक्तियाँ वन में घूम रही थीं। वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलती थी। वहाँ अशोक वृक्ष व चंपक वृक्ष शोभते थे। किंशुक के फूल शोभनीक थे। ऐसी वसन्तऋतु में जम्बूकुमार अन्य कुमारों को लेकर वन में क्रीड़ा करने को गये। उस समय नगर के लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वन में गये थे और वन की क्यारियों में मनवांछित क्रीड़ा करते थे। एकदफे सर्वजन सरोवर में स्नान करने को गये। स्नान करके अपने डेरों की तरफ आ रहे थे। मार्ग में परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। कुछ लोग घोड़े और हाथियों पर सवार थे। चारों तरफ बाजों की गम्भीर ध्वनि हो रही थी।

राजा के हाथी का छूटना

यह भयंकर कोलाहल सुनकर श्रेणिक राजा का वह हाथी जो युद्ध में जाता रहता था, भयभीत हो गया। सांकल तोड़कर क्रोध में भरकर वन में घूमने लग। उसके कपोल से मद झरता

था, जिस पर भ्रमर गूँजार कर रहे थे। उसको देखकर व उसके भयंकर शब्द को सुनकर सब जन भयभीत हो गये। वह नील पर्वत समान काला था। कान जिसके हिलते थे बड़ा भारी शरीर था, काल के समान था। अषाढ़ मास के मेघों के समान था। बड़े-बड़े दाँतों से पृथ्वी को खोदता था। सूँढ़ से पानी लेकर फेंकता था। ऐसे हाथी के छूट जाने से सारा वन भयानक भासने लगा। वह हाथी जिधर जाता था वृक्षों को जड़मूल से उखाड़ लेता था। वह वन इतना मनोहर था कि उस वन में आम्र, जांवन, नारंगी, तमाल, ताल, अशोक, कदम्ब, मल्लकी, शाल, नींबू, किसमिस, खजूर, अनार आदि फलों के वृक्ष थे। चम्पा, कुन्द, मचकुन्द आदि के सुगन्धित फूल थे। नागरवेलादि सुन्दर पत्तों से मनोहर था। इलायची, लवंग, सुपारी, नारियल आदि से पूर्ण था मोर मोरनी के शब्दों से गूँज रहा था। कोयलें मनोहर ध्वनि कर रही थीं, उस वन की शोभा क्या कही जावे! देवगण भी जिसकी प्रशंसा करते थे।

उन्मत्त हाथी ने सर्व वन को क्षणमात्र में नाश कर दिया, जिस तरह विषयों के लोभ में फंसा हुआ मलीन मन पुण्य के वृक्ष को नाश कर डालता है। सब लोग कायरता से इधर-उधर भागते थे, कोई हाथी के सामने नहीं आता था, कोई आकुलित चित्त हो अपनी स्त्रियों के रक्षण में लग रहे थे, जो बेचारी अधीर हो सावधानी से नहीं चल सकती थीं, योद्धा लोग हाथी को बाँधने के लिये सामने जाने का साहस नहीं करते थे, मालूम नहीं आज क्या होनेवाला है।

बड़े-बड़े योद्धा हाथी के गौरव को देखकर उत्साह रहित

उद्यमरहित उदास थे। राजा श्रेणिक भी सामने था, वह भी उस हाथी को पकड़ न सका। जम्बूस्वामी कुमार बड़े बलवान व वीर्यवान थे, वे अपने स्थान पर ही खड़े रहे, किंचित् भी भय से हटे नहीं। उस हाथी को तूता के समान समझकर जम्बूकुमार ने भयरहित हो धैर्य से उसकी पूंछ पकड़ ली।

वास्तव में वज्र के समान जम्बूकुमार की हड्डियाँ थीं, वज्र के समान कीले थे, वज्र के समान नसों का जाल था। इस कुमार को वज्र भी खण्डित नहीं कर सकता था। कीट समान हाथी की तो बात ही क्या है। हाथी ने बहुत पुरुषार्थ किया कि कुमार के शरीर को बाधा पहुँचावे, परन्तु वह वज्र शरीर को किंचित् भी कष्ट नहीं दे सका। वज्र शरीरधारी यदि हाथी को जीत ले तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है।

जम्बूकुमार का हाथी को वश करना

कुमार का साहस व बल अचिन्त्य था। उन्मत्त हाथी को कुमार ने क्षणमात्र में मदरहित कर दिया। वह कुमार उसके दाँतों पर पाँव रखकर शीघ्र ही उसके ऊपर चढ़ बैठा और हाथी का मान चूर्ण करके उसको इच्छानुसार इधर-उधर घुमाने लगा, तब सर्व ही महान पुरुषों ने जम्बूकुमार का बड़ा ही सत्कार किया।

सब लोग कहने लगे—धन्य है कुमार का अद्भुत बल! देखो जिसने देखते-देखते एक क्षण में भयानक हाथी को वश कर लिया। अहो पुण्य का बड़ा माहात्म्य है! महान पुरुषों के द्वारा यह पूज्य है। पुण्य के बल से यश प्राप्त होता है, पुण्य से विजय होती है, पुण्य से सुख मिलता है। कहा है—

अहो पुण्यस्य माहात्म्यं महनीयं महात्मभिः।
येन हस्तगतं सर्वं यशः सौख्यमथो जयः ॥86॥

जम्बूकुमार का वीर्य देखकर श्रेणिक महाराज को आश्चर्य हुआ। नीतिनिपुण राजा ने उस कुमार को बुलाकर अपने साथ अर्धसिंहासन पर बैठाया, प्रसन्न मन हो बारबार कुमार की प्रशंसा करने लगा व द्रव्यों से व रत्नों से कुमार की भक्तिपूर्वक पूजा की। राजा कहने लगा—हे महाभाग! तू धन्य है, जिसने ऐसे भयंकर हाथी को वश किया। तेरी जिनमती माता धन्य है जिसके गर्भ से तेरे समान पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी हाथी के मस्तक पर बैठाकर दुन्दुभि बाजों की ध्वनि के साथ व सैकड़ों राजाओं के समूह को साथ लिये हुए कुमार को नगर में प्रवेश कराया।

माता-पिता बड़े आदर से अपने घर में लाये और उसका बड़ा ही सम्मान किया। सिंहासन पर बैठाकर माता-पिता ने मस्तक झुका कर स्नेह से चित्त भिगोकर पूछा हे वत्स! गजराज को वश करते हुए तेरे शरीर में सब कुशल है? कोई-कोई कुमार के शरीर को कोमल हाथ से स्पर्श करने लगे—कहाँ तेरा केले के पत्ते के समान कोमल शरीर, कहाँ मेरु पर्वतसम हाथी, किस तरह तूने वश किया? महान आश्चर्यवान् होकर माता-पिता अपने पुत्र के मुख को देखकर सुख को प्राप्त होते थे। जिस पुण्य के फल से जम्बूस्वामी कुमार राज्यसभा में मान्य हुए, बुद्धिमानों को उचित है कि उस पुण्य का संग्रह करें।

छठा अध्याय

जम्बूस्वामी की जय पताका

दु:ख की सन्तान को हरनेवाले वे व धर्मतीर्थ के कर्ता श्री श्रेयांस भगवान को तथा सर्व विघ्नों की शान्ति के लिये श्री वासपूज्य तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ।

एक दिन राजा श्रेणिक सभा के बीच सिंहासन पर विराजित थे। अनेक राजा उनके चरणकमलों की सेवा करते थे, नतमस्तक थे। पानी के झरने के समान चँवर राजा पर ढूर रहे थे। महामन्त्री, सेनापति आदि राज्य कर्मचारी वर्ग सभा में, यथास्थान शोभायमान थे। पास में श्री जम्बूस्वामीकुमार भी प्रसन्नता से तिष्ठे हुए थे, जिनके शरीर का तेज राजाओं के शरीर के तेज को मंद करता था।

विद्याधर द्वारा केरलदेश वर्णन

इतने में अकस्मात् आकाश के मार्ग से दिशाओं में प्रकाश फैलाता हुआ एक विद्याधर आया। यह घण्टों की ध्वनि से शोभित विमान पर आरूढ़ था। विमान को ठहराकर वह नीचे उतरा, राजा श्रेणिक के पास जाकर नमस्कार किया और विनय सहित वह कहने लगा कि—हे राजन्! सहस्रशृंग नाम का एक उत्तम पर्वत है जहाँ विद्याधर मनुष्य रहते हैं, उसी पर्वत पर मैं भी दीर्घ काल से सुखपूर्वक रहता हूँ। मेरा नाम व्योमगति घोड़ा है। हे राजन् मैं एक आश्चर्यकारी बात को कहने को आया हूँ, सो आप श्रवण करें। मलयाचल पर्वत के दक्षिण भाग में केरल नाम का नगर है! उस नगर का राजा मृगांक यशस्वी व गुणवान है।

उसकी स्त्री का नाम मालतिलता है। वह मेरी बहन है। वह शीलवान है, गुणवान है, सुवर्ण के समान शरीरचारी है, उसकी कन्या का नाम विशालवती है। कर्मविधाता के द्वारा वह काम की क्रीड़ा का स्थान ही निर्मापित है, विशालनेत्र कर्णपर्यन्त चले गये हैं। शरीर कंचन समान है। एक दिन मृगांक राजा विद्याधर ने एक मुनिराज से प्रश्न किया कि हे दयासागर स्वामी! मेरा एक संशय है, उसको निवारण कीजिये। मेरी पुत्री का वर कौन होगा? इस वाक्य को सुनकर मुनिमहाराज अपनी दाँतों की किरणों से दिशाओं को धोते हुए यथार्थ वचन कहने लगे कि राजगृह नाम के रमणीक नगर में राजा श्रेणिक है, वही तेरी पुत्री विशालवती का वर होगा।

(नोट – महावीरस्वामी के व गौतमबुद्ध के समय में दक्षिण की तरफ केरल देश में ऐसे लोग रहते थे, जिनको विद्याधर कहते हैं। ये लोग आकाश में विमानों पर चढ़कर चलते थे। उस समय भी विमान पर चढ़कर चलने की कला का प्रचार था, ऐसा इस चरित्र से झलकता है।)

हे स्वामी! हंसद्वीप का निवासी विद्याधरों का राजा बड़ा तेजस्वी रत्नचूल नाम का विद्याधर है। उसने उस सुन्दर कन्या को अपने लिये वरने की इच्छा प्रकट की। राजा मृगांक को मुनिराज के वचनों पर श्रद्धा थी। उसने श्रेणिक को ही देने का विचार स्थिर करके रत्नचूल की बात अस्वीकार की। इस बात से रत्नचूल ने अपना बहुत अपमान समझा, क्रोधित हो गया, मृगांक ने राजा से वैर बाँध लिया, सेना को सजाकर उसने मृगांक के नगर को नाश करना प्रारम्भ कर दिया है। उस पापी ने मकान तोड़ डाले हैं। धन-धान्य से पूर्ण व ग्रामों की पंक्तियों से शोभित

ऐसे ऐश्वर्यवान देश को ऊजाड़ कर दिया है। वनों को उखाड़ डाला है, किला भी तोड़ दिया है और अधिक क्या कहूँ, सर्व ही नाश कर दिया है। मृगांक भय से पीड़ित होकर अपने किले के भीतर ठहर कर किसी तरह अपने प्राणों की रक्षा कर रहा है। वर्तमान में जो वहाँ की दशा है सो मैंने कह दी। आगे क्या होगा, उसे ज्ञानी के सिवाय और कौन जान सकता है ? मृगांक राजा भी युद्ध में सावधान हैं। आजकल में वह भी अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध करेगा।

क्षत्रियों का यह धर्म है कि जब युद्ध में शत्रु का सामना किया जाता है, तब प्राणों का त्याग करना तो अच्छा है परन्तु पीठ दिखाकर जीना अच्छा नहीं। कहा है —

क्रमोऽयं क्षात्रधर्मस्य सन्सुखत्वं यदाहवे।
वरं प्राणात्ययस्यत्र नान्यथा जीवनं वरं ॥30॥

महान पुरुषों का धन प्राण नहीं है, किन्तु मानरूपी मकान धन है। प्राण जाने पर भी यश को स्थिर रखना चाहिए। मान नहीं रहा तो यश कहाँ से हो सकता है ? कहा है —

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत्।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत् मानत्यागे कुतो यशः ॥31॥

जो कोई शत्रु के पूर्व बल को देखकर बिना युद्ध किये शीघ्र भाग जाते हैं, उनका मुख मैला हो जाता है। जो कोई बुद्धिमान धैर्य को धारण करके युद्ध करते हैं, मर जाते हैं, परन्तु पीठ नहीं दिखाते हैं, वे ही यशस्वी धन्य हैं। कहा है —

ये तु धैर्य विधायाशु युद्धं कूर्वेति धीधनः।
मृतास्तत्रैव नो भग्ना धन्यास्ते हि यशस्विनः ॥33॥

हे राजन्! मैं वचन देकर आया हूँ, मुझे वहाँ शीघ्र जाना है। यह कार्य परम आवश्यक है, मुझे विलम्ब करना उचित नहीं है। मैं क्षण मात्र यहाँ पर आपका दर्शन करता हुआ इस उत्तम स्थान में वहाँ का वर्णन करता हुआ ठहरा था। अब मेरा मन यहाँ अधिक ठहरना नहीं चाहता है। हे राजन्! आज्ञा दीजिये जिससे मैं शीघ्र जाऊँ। ऐसा कहकर वह आकाशगामी विद्याधर तुरन्त चलने को उद्यमी हुआ। इतने में जम्बूस्वामी उस विद्याधर से कहने लगे—

हे विद्याधर! क्षणभर ठहरो, ठहरो, जब तक श्रेणिक महाराज तैयारी करें। यह महाराज बड़े पराक्रमी हैं। सर्व शत्रुओं को जीत चुके हैं। उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, बलदों की चार प्रकार की सेना है। यह महावीर हैं, राजा बड़ा बुद्धिमान है, राज्य के सातों अंगों से पूर्ण है, तेजस्वी है, यशस्वी है। कुमार के वीरतापूर्ण वचन सुनकर विद्याधर को आश्चर्य हुआ। फिर वह विद्याधर सर्व वचन युक्तिपूर्वक कहने लगा—

हे बालक! तूने जो कुछ कहा है वही क्षत्रियों का उचित धर्म है परन्तु यह काम असम्भव है। इसमें तुम्हारी युक्ति नहीं चल सकती। यहाँ से यह स्थान सैकड़ों योजन दूर है, वहाँ जाना ही शक्य नहीं है तब वीर कार्य करने की बात ही क्या? तुम सब भूमिगोचरी हो, वे आकाशगामी योद्धा है, उनके साथ आपकी समानता कैसे हो सकती है? जैसे कोई बालक हाथी को पानी में डालकर चन्द्रबिम्ब की परछाई को चन्द्र जानकर पकड़ना चाहें वैसा ही आपका कथन है। अथवा कोई बोना मानव बाहुरहित हो और ऊँचे वृक्ष के फल को खाना चाहे तो वह हास्य का

भाजन होगा, वैसा ही आपका उद्यम है। यदि कोई अज्ञानी पगों से सुमेरु पर्वत पर चढ़ना चाहे, कदाचित् यह बात हो जावे परन्तु आपके द्वारा यह काम नहीं हो सकता है। जैसे कोई जहाज के बिना समुद्र को तरना चाहे वैसे ही यह आपका मनोरथ है कि हम रत्नचूल को जीत लेंगे।

इस तरह हजारों दृष्टान्तों से उस विद्याधर ने अपने प्रभाव का बल दिखलाया। सर्व ओर चुप रहे, परन्तु यशस्वी कुमार से न रहा गया। वह वादी प्रतिवादी के समान अनेक दृष्टान्तों से उत्तर देने लगा—हे विद्याधर! ऐसे बिना जाने वचन कहना ठीक नहीं है। ज्ञान बिना किसी के बल व अबल को कौन जान सकता है? कुमार के वचन को सुनकर व्योमगति विद्याधर निरुत्तर हो गया। मौन से पराक्रम को देखने के लिये ठहर गया। श्रेणिक राजा उनके वचनों को सुनकर अहंकार युक्त होकर यह विचारने लगा कि यह काम बहुत कठिन है, ऐसा सोचकर मन में घबड़ा गया। राजा बार-बार विचार करता है, खेदित होता है, उस काम को दुर्बल जानकर कुछ करने का दृढ़ संकल्प न कर सका। न तो शीघ्र चलने को तैयार हुआ न उसको कुछ उत्तर ही दे सका। दो काठ की तराजू में चढ़कर राजा का मन हिलने लगा।

जम्बूकुमार का साहस

इतने ही में जम्बूस्वामीकुमार ने आनन्दसहित गम्भीर वाणी से शान्तभाव के द्वारा ऊँचे स्वर से कहा—हे स्वामी! यह काम कितना है? आपके प्रसाद से सिद्ध हो जाएगा। सूर्य की तो बात ही दूर रहे, उसकी किरण मात्र से अन्धकार मिट जाता है। मेरे समान बालक भी उस काम को कर सकता है तो आपकी तो

बात ही क्या है, जिनके पास चार प्रकार की सेना तैयार है।

जम्बूकुमार के वचन सुनकर श्रेणिक महाराज आनन्दित हो गये। जैसे सम्यग्दृष्टि तत्त्व की बात कर आनन्दित हो जाता है और जम्बूकुमार के वचनों पर श्रद्धावान हो गये। तब हर्षपूर्वक मगध का राजा कहने लगा कि यदि ऐसा है तो क्षत्रिय धर्म की मर्यादा सदा बनी रहेगी। जिस काम से कन्या का लाभ हो व क्षत्रियों का यश हो, उस काम के साधने से ही हम अपना जन्म सफल मानते हैं।

हे धीर वत्स! तू परंपरा फल का ज्ञाता है ऐसा विचार कर तुझे शीघ्र वहाँ जाना चाहिए। इस शुभ कार्य में विलम्ब न करना चाहिए।

जम्बूकुमार का युद्धार्थ गमन

आनन्द सहित राजा से इस तरह आज्ञा पाकर कुमार भयरहित हो अकेले वहाँ जाने को तैयार हो गये। कुमार का साहस व बल अपूर्व था। तब उस वीर कार्य के करने का उद्यमी होकर जम्बूकुमार ने व्योमगति विद्याधर से कहा—हे विद्याधर! अपने विमान में मुझे बिठा ले, और शीघ्र ही वहाँ ले चल जहाँ रत्नचूल है।

कुमार के आश्चर्यकारी वचन सुन के विद्याधर कहने लगे—हे बालक! आप वहाँ चल के क्या करेंगे? मृग का बच्चा अपने ही घर में चपलता रखता है, जब तक क्रोधित सिंह गर्जना करता हुआ सामने न आवे। तब ही तक शरीर सुन्दर भासता है, जब तक भयानक दाँतवाला यमराज नहीं खा जावे तब ही तक तृणादि जंगल में हरे-भरे दिखते हैं, जब तक प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला वन में न फैले। आकाश में मेघों का समूह तब ही तक शोभता है जब तक दुर्धर तीव्र पवन उन मेघों को उड़ा न दे। तब ही तक

आयु, आरोग्यता, यश, सम्पत्ति, जय आदि रहते हैं, तब तक तीव्र पाप का उदय न आवे।

उसी समय तक जैनधर्म के समान निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत होता है, जब तक स्त्रियों के कटाक्षों से मन जर्जरित न हो। तब ही तक साधु के मूलगुणकारी होते हैं, जब तक क्रोध की अग्नि उनका क्षण में भस्म न कर दे। सुमेरुपर्वत के समान गौरव प्राणी का उसी समय तक रहता है, जब तक वह दीन भाव से 'देहि' अर्थात् देखो ऐसे दो अक्षर मुँह से नहीं निकलता है। तब ही तक हे बालक! तेरा बालप्रताप है जब तक रत्नचूल के बाणों से तू जर्जरित न किया जावे। कहा है—

तावब्रह्मव्रतं साक्षान्निर्मलं जैनधर्मवत्।
यावद्योषित्कटाक्षाणां नापर्तिर्जर्जरं मनः ॥71॥

ताबन्मूलगुणाः सर्वे संति श्रेयोविधायिनः।
तावद्ध्वंसी न रोषाग्निर्भस्मसात्कुरुतेक्षणात् ॥72॥

गौरवं तावदेवास्तु प्राणिनः कनकाद्रिवत्।
यावन्न भाषते दैन्यद्देहीति द्वौ दुरक्षरौ ॥73॥

ऐसे क्रोध को पैदा करनेवाले वचन सुनकर जम्बूकुमार कहने लगे—उनके भीतर क्रोध अग्नि थी, बाहर नहीं थी, वह आगे भस्म करेगी। हे आकाशगामी विद्याधर! तेरा कहना ठीक नहीं यह बालक क्या करेगा सो तू अभी ही देख लेगा।

जगत के तीन प्रकार के प्राणी हैं। उत्तम वे हैं जो कहते नहीं किंतु करते बताते हैं। मध्यम हैं वे जो कहते हैं व करते भी है। जघन्य वे हैं जो केवल कहते हैं परन्तु करते नहीं हैं। कहा है—

कुर्वंति न वदंत्येव कुर्वंति न वदंति च।
क्रमादुत्तममध्यास्तेऽधमोऽकुर्वन् वदन्नपि ॥77 ॥

तब मगधेश, श्रेणिककुमार के योग्य वचन सुनकर तथा कुमार के पुरुषार्थ को समझकर विद्याधर से कहने लगा—

हे विद्याधर! जो तूने मेरे सामने ऐसा कहा कि यह बालक अकेला आकर वहाँ क्या करेगा, यह तुम्हारा सर्व पक्ष दोषपूर्ण है। जिस सिंह को मृग नहीं मार सकते उस सिंह को अकेला अष्टापद मार डालता है। जिस यम ने सर्व जगत को मारा है, उस यम को जिनेन्द्र ने जीत लिया है। प्रचण्ड दावाग्नि को भी मेघ का जल अकेला बुझा देता है। जो वायु मेघ को उड़ा देती है, वह ऊँचे सुमेरुपर्वत को नहीं उड़ा सकती है। रात्रि में अन्धकार के समान मिथ्याज्ञान तब तक ही रहता है, जब तक रात्रि के अन्धकार को दूर करनेवाले सूर्य के समान आत्मिक ज्ञान का प्रकाश उदय नहीं हो। जो क्रोध की अग्नि सर्व कर्माधीन प्राणियों को जला देती है, उसी को कोई-कोई महात्मा उत्तमक्षमारूपी बल से शान्त कर देता है। तीर्थंकर भगवान सर्व प्राणियों के हित करनेवाली मुनिदीक्षा को लेकर भिक्षा से भोजन करते हैं तो भी उनकी इन्द्रादि पूजा करते हैं। सूर्य एक अकेला ही आकाश में उदय होता है। क्या वह सर्व जगत के अन्धकार को दूर नहीं कर देता है? बड़े पुरुषों ने यह वचन कहा है कि कार्य को सिद्ध करनेवाला एक पुरुष भी होता है।

श्रेणिक राजा ने जो वचन कहे उनको विद्याधर ने बड़े आदर से अपने मस्तक पर चढ़ाये। विद्याधर ने उस दिव्य विमान में श्रेणिक महाराज की आज्ञा पाकर अनुपम बलधारी श्री जम्बूकुमार

को बैठाया। वह विमान आकाश के मार्ग से चल के पवन के वेग के समान शीघ्र ही इच्छित स्थान पर पहुँच गया। पीछे श्रेणिक राजा भी चार प्रकार की सेना को लेकर वीर योद्धाओं के साथ चल पड़ा। रण के बाजे बजने लगे, उनको सुनकर मेघ की ध्वनि की शंका औरों को हो गयी। घोड़ों से खींचे हुए रथ चलने लगे, हाथी भी महान शब्द करने लगे।

श्रेणिक राजा का सेना सहित प्रस्थान

छह अंगों की शक्ति को रखनेवाला श्रेणिक राजा रत्नचूल के जीतने की इच्छा से चला। उसकी सेना में हाथी झरनों के पतन को रखनेवाले पर्वतों के समान मद को भूमि पर सींचते हुए ऐसे चलते मालूम होते थे, मानो पर्वतमालाएँ ही चल रही हैं। उन हाथियों के ऊपर सुभट अंकुश लिये विराजमान थे। घोड़ों के ऊपर चमकती हुई तलवारों को लिये हुए योद्धा बैठे थे, वे घोड़े सुन्दर ध्वनि कर रहे थे।

शस्त्रों से सजे हुए रथ मार्ग में चलते हुए ऐसे दिखते थे, मानों संग्रामरूपी समुद्र को तैरनेवाली नौकाएँ हैं। पैदल चलनेवाले योद्धा कवच और रक्षा का टोप पहने हुए खडगादि हाथ में लिये चल रहे थे। शस्त्रों को लिये हुए भटों का समूह ऐसा शोभता था मानों बिजली सहित मेघ ही चल रहे हैं। चारों प्रकार की सेना को लेकर श्रेणिक निकला। प्रथम पैदल सेना थी, फिर घोड़ों की सेना थी, फिर रथों की, फिर हाथियों की। बीच में ही श्रेणिक महाराज का रथ पताका सहित था। नगर की सड़कों को लाँघकर सेना धीरे-धीरे चलती थी। तरंग सहित समुद्र ही मालूम होता

था। नगर की स्त्रियों ने अपने झरोखों से दृष्टि के साथ-साथ पुष्पों की भी वर्षा की। नगर के बाहर दूर जाते हुए नगरवासियों को राजा श्रेणिक की सेना बहुत बड़ी विदित होती थी। ऐसा झलकता था, मानो प्रलयकाल की पवन से समुद्र क्षोभित हो गया है, अथवा तीन जगत के प्राणी आकुलित हो जा रहे हैं।

श्रेणिक महाराज ने देखा कि कहीं लताओं के मण्डप में चन्द्रकान्ति मणि की शिलाओं पर राजा का यशगान करते हुए किन्नरदेव बैठे हैं। कहीं लताओं में फूलों को व भौरों को उन पर संलग्न देखकर राजा को कृष्णकेशवाली अपनी स्त्रियों की स्मृति आ जाती थी। राजा श्रेणिक ने मार्ग में छायादार फलों से लदे हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को देखा। सरोवरों के तटों पर भूमि पर कमलों की रज पड़ी हुई थी सो सुवर्ण की रज के समान झलकती थी। चलती हुई सेना की रज आकाश में छा जाती थी सो रात्रि होने की शंका हो जाती थी। कहीं पर दूध को झलकाती हुई गायें जंगल में जाती हुई दिखती थीं। कहीं पर ऊँचे-ऊँचे सींगवाले बैल स्थल-कमलों को अंकित करते हुए जाते थे। कहीं निर्मल यश के समान सफेद कमल की डंढ़ियें दिखती थीं, कहीं पर दूध पीकर सन्तोषी बछड़े स्वच्छ शरीर दिखायी पड़ते थे।

राजा ने देखा कि नगर के कोट के बाहर पक्के धान्य से लदे हुए खेत खड़े हुये थे व फल से भरे हुए खेत झुके हुए थे, उद्धत नहीं थे। मानों वे मानवों को कह रहे हैं कि वे इनका भोग कर सकते हैं। राज्यवर्ग से वेष्ठित राजा देखकर प्रसन्न हुआ। कहीं पर राजा ने सुन्दर स्त्रियों को इक्षुदण्ड या गदा हाथ में लिये देखा। कहीं पर खेतवालों की बन्धुओं को मनोहर गीत गाते हुए देखा।

उनके गीत की ध्वनि से हंस आकाश में छा रहे थे। चावलों के खेतों की रक्षा करनेवाली बालिकाएँ बैठी थीं, जिनके मुख की सुगन्ध लेने के लिये भ्रमर उड़ रहे थे। दोपहर के समय राग-द्वेष न करके मध्यस्थ रहनेवाला सूर्य भी तीव्र धूप से तप रहा था। यह ठीक है, तीव्र प्रताप धारनेवालों का मध्यस्थ भाव भी तापकारी होता है।

बड़े-बड़े घोड़े खुरों को उछालते हुए व मुँह से वमन करते हुए चले जाते थे। वन के पशु पक्षी सेना की महान ध्वनि को जिसे कभी सुना नहीं था, सुनकर भयवान हो गये। हाथी उस वन से दूसरे वन को चले गये। केशरीसिंह जाग करके मुँह फाड़ करके निर्भय हो देखने लगा, भैंसे व गायें व मृग व सूकर वन के भाग को छोड़कर चले गये। बहुत दूर चलकर सेना ने रेवा नदी के किनारे डेरा किया। फिर वहाँ से केरल नगर की तरफ जाते हुए कुछ दिनों में सेना कुरल पर्वत पर पहुँच गयी। कहा है—

ततस्तां च समुत्तीर्य प्रतस्थे केरलां प्रति।
विशश्राम कियत्कालं नाग्ना केरलभृधरे ॥143 ॥

यहाँ पर्वत पर सेना ने कुछ काल विश्राम किया। पर्वत पर श्री जिनेन्द्र के बिम्बों की राजा श्रेणिक ने पूजा की व मुनियों की भी भक्ति की। फिर राजा वहाँ से भी आगे चला। व कुछ दूर जाकर सेना सहित ठहर गया।

(नोट - केरलनगर, मलबार मद्रास देश में है। जिनके पास ही कुरल पर्वत होना चाहिए। यहाँ दो हजार वर्ष पूर्व श्री जिनमन्दिर थे। वर्तमान में यह पहाड़ कहाँ पर है, इसका पता लगाना चाहिए।)

राजा श्रेणिक ने तो यहाँ विश्राम किया, उधर श्री जम्बूकुमार विद्याधर के साथ ही शीघ्र ही केरल नगरी में पहुँच गये। नगरी में सेना का शब्द हो रहा था। सुनकर जम्बूकुमार ने विद्याधर से पूछा, यह कोलाहल क्या है ? तब विद्याधर ने कहा कि आपके शत्रु रत्नचूल की सेना यहाँ पड़ी हुई है, इसी का शब्द है। मैंने पहले कहा था कि कन्या को इसने माँगा था, न मिलने से मानभंग से क्रोधी होकर यह यहाँ आया है, देश को उजाड़ा है। राजा मृगांक भयभीत हो किले के भीतर बैठा है। स्वामी! इसके सेवक बहुत से विद्याधर हैं। यह बहुत से शत्रुओं को जीतनेवाला विद्याधरों का स्वामी है। इसका जीतना दुर्निवार है। विद्याधर के इन वचनों को सुनकर कुमार का क्रोध अधिक बढ़ गया। कुमार ने कहा—हे विद्याधर! तू विमान को यहाँ ठहरा, उसकी रक्षा कर, मैं जाकर देखता हूँ, रत्नचूल का कैसा उद्धत बल है ?

जम्बूकुमार विमान से उतरे और सीधे शत्रु की सेना में निर्भय होकर चले गए व कौतुक से सेना को इधर-उधर से देखने लगे। सेना के योद्धा कामदेव के समान सुन्दर कुमार को बारबार देखकर चकित हो आपस में बातें करने लगे—यह कौन है, कोई इन्द्र है, धरणेन्द्र है या कामदेव है जो हमारी सेना को देखने के लिये आया है। कोई कहने लगा कि यह कोई महा भाग्यवान लक्ष्मीवान सेठ है, जो रत्नचूल की सेवा को आया है, कोई कहने लगा कि यह कोई राजा है, जो कर देने को व अपना स्नेह बताने को आया है। कोई कहने लगा यह कोई छली धूर्त वेषधारी सुन्दर नर है। सेना के सैनिक आपस में बातें करते ही रहे। किसी का साहस पूछने का न हुआ। कुमार सीधे राजद्वार पर पहुँच गये।

जम्बूकुमार का रत्नचूल से मिलना

द्वारपाल से कहा कि भीतर जाकर विद्याधर से मेरा सन्देश कह दे कि मैं दूत हूँ, मृगांकराज ने मुझे भेजा है। आपसे कुछ समताकारी बात करना चाहता हूँ। द्वारपाल ने शीघ्र ही भीतर जाकर व राजा को नमन कर यह कहा—कोई मानव द्वार पर है जो आपका दर्शन करना व बात करना चाहता है। रत्नचूल ने उसे बुलाने की आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर द्वारपाल जम्बूकुमार के पास आया और भीतर जाने को कहा। जम्बूकुमार अपनी कान्ति से तेज को फैलाते हुए भीतर निर्भय हो चले गये व नमस्कार किये बिना सामने खड़े हो गये। रत्नचूल उसे देखकर आश्चर्य करने लगा कि यह कैसा दूत है, जो नमस्कार की क्रिया भी नहीं जानता है, कुछ न कहकर खम्भे के समान सामने खड़ा है। मालूम होता है कि यह कोई देव है या कोई महापुरुष है जो मेरे बल की परीक्षा करने को आया है। ऐसा मन में चिन्तवन करके रत्नचूल ने कुमार से पूछा आप किस देश से मेरे पास किस काम के लिये आये हैं? सुनकर कुमार कहने लगे कि नीतिमार्ग का आश्रय करके तुम्हें समझाने के लिये यहाँ शीघ्रता से आया हूँ। तुम अपना खोटा हठ छोड़ दो। इस दुराग्रह से इसलोक व परलोक दोनों में तुम्हें दुःख प्राप्त होगा। हे विद्याधर! इससे तेरा अपयश होगा व तू दुर्गति का पापबन्ध करेगा। जगत में जगह-जगह हजारों स्त्रियाँ हैं, तुझे इसी कन्या से क्या साध्य है, यह हम नहीं समझ सके। यदि तू अपनी सेना के बल का अभिमान रखता है तो यह तेरा अज्ञान है।

जम्बूकुमार का उपदेश

इस संसाररूपी वन में कर्मसहित अनन्त जीव अपने-अपने

कर्मों के अनुसार भ्रमण किया करते हैं। कर्म नाना प्रकार के होते हैं, उनका फल भी नाना प्रकार का होता है। इन कर्मों के स्वरूप को न जानते हुए जीव मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हो रहे हैं। कर्मों के फल के सम्बन्ध में श्री समन्तभद्र कृत स्वयंभूस्तोत्र में कहा है—

अलंघ्यशक्तिभवितव्यं हेतुद्वयाविष्कृतसकार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्यवादीः ॥33॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्त मोक्षो नित्यं शिवं वांछति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकर्मवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥34॥

भावार्थ :- जो भवितव्य है, उसकी शक्ति को कोई लांघ नहीं सकता है। कार्य दो कारणों से होता है-पुरुषार्थ से और पूर्व पुण्य के उदय से। हे सुपार्श्वनाथस्वामी! आपने ठीक-ठीक बताया है कि कोई इस बात का अहंकार करे कि मैं कार्य कर ही जाऊँगा तो वह पुण्य की सहायता के बिना नहीं कर सकता है। हर एक प्राणी मरना नहीं चाहता है, डरता रहता है, परन्तु मरण से कोई बचता नहीं। हर एक नित्य भला चाहता है, परन्तु सबका भला नहीं होता। जब पुण्य के उदय से काम होता व पाप के उदय से विनाश होता है, तब अज्ञानी वृथा ही मरण से डरता है, इच्छाओं के द्वारा जलता है, ऐसा आपका यथार्थ कथन है।

कोई माने कि मैं योद्धा हूँ, उससे बलवान योद्धा मिलेगा। फिर कोई उससे ही बलवान मिलेगा। संसार में ऐसी ही स्थिति है। कोई का अहंकार नहीं रहता, कोई अपने को विजयी माने और वह समझे कि मुझे कोई विघ्न नहीं आवेगा। यह बात भी नहीं है। इस संसार में जीवों को भक्षण करनेवाला यमराज सदा तैयार रहता है।

हे रत्नकचूल विद्याधरों के स्वामी! तू उत्तम विचार में लीन हो। बलवान भी मानव आदि कुमार्ग में चलकर प्रमादी हो जाते हैं तो वे क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं। रावण आदि ने अभिमान किया था, वह बात प्रसिद्ध है। वह अपयश का भागी हुआ व दुर्गति को भी गया। जब मृगांक ने अपनी इस कन्या को श्रेणिक राजा के लिये देना निश्चय कर लिया है तो वह तुझे कैसे दी जा सकती है? यह बात अपयश की होगी। यदि युद्ध हो तो क्षत्रिय का धर्म नहीं है कि अपने जीवन की रक्षा के लिये युद्ध से भाग जाए। कौन ऐसा बुद्धिमान है जो अपयशरूपी विष का पान करेगा?

हे विद्याधर! तू प्रसन्न हो, प्रमाद का विधान आचरण न कर, तुझे कोई निन्दायोग्य वचन भी नहीं कहना चाहिए।

इस तरह जम्बूकुमार ने सुन्दर वचनरूपी पुष्पों से गुँथी हुई अति शीतल माला रत्नचूल को पहनाई, परन्तु विरही स्त्री को पुष्पमाला उष्ण भासती है, वैसे ही विद्याधर को वह तापकारी हो गयी।

रत्नचूल का जवाब

तब रत्नचूल की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं, ओंठ काँपने लगे। क्रोध से जलती हुई वाणी निकाली—हे बालक! तू मेरे घर में दूत बनकर आया है, बालक है, इसलिये मारने योग्य नहीं है, परन्तु तुझ दुष्ट की दूसरी अवस्था नहीं हो सकती है। तुझको लज्जा नहीं आती है जो तू अपने स्वामी के काय को विनाश करनेवाले व वैर बढ़ानेवाले विरुद्ध वचन कहता है? तू इस बात को नहीं जानता है कि क्या कहना चाहिए क्या न कहना चाहिए, न बल, अबल का तू विचार करता है, बावले के समान ढीढ़ता से जो मन में आया सो बकता है।

उलूक की शक्ति नहीं है जो सूर्य का सामना कर सके। हे दूत! मेरे सामने तुझे ऐसे वाचाल वचन कहना योग्य नहीं है। जैसे जीरा बीज सुमेरु पर्वत को क्या भेद सकता है ? इसी तरह दुष्ट मृगांक या श्रेणिक कोई भी युद्ध में मेरा सामना नहीं कर सकते। हे दूत! हम विद्याधर हैं, श्रेणिक भूमिगोचरी है। हम दोनों की सामर्थ्य क्या कभी बराबर हो सकती है ? अधिक कहने से क्या, तू मौन रख, मेरे साथ जिसको युद्ध करना हो वह शीघ्र ही आ जावे, ऐसा कहकर रत्नचूल निश्चल मन धर के गम्भीर व अक्षोभित समुद्र के समान आकुलतारहित हो गया।

जम्बूकुमार का जवाब

वज्रवृषभनाराच संहनन का धारी प्रचण्ड पराक्रमी निर्भय जम्बूकुमार मेघ की ध्वनि के समान गम्भीर वाणी कहने लगा— हे रत्नचूल विद्याधर! यह सब तूने घमण्ड में होकर कहा है। यह तेरा कथन तेरे अभिमान को चूर्ण करनेवाला है व हेतु से बाधित है। रावण विद्याधर था, उसे भूमिगोचरी रामचन्द्र ने सेना सहित युद्ध करके अपने बल से ही मार डाला। काक भी आकाश में उड़ता है। जब वह बाणों से छिद जाता है, तब वह भूमि पर आकर गिर पड़ता है।

ऐसे वचन सुनकर रत्नचूल क्रोध से भर गया और तलवार लिये हुए योद्धाओं को आज्ञा दी कि जम्बूकुमार को मारो। तब वे आठ हजार योद्धा जो कुमार के बल को नहीं जानते थे, कुन्तादि शस्त्रों से बलवान जम्बूकुमार को मारने का उद्योग करने लगे। इतने ही में कुमार ने अपनी दोनों भुजाओं से व लातों की मार से कितने ही को यमपुर में पहुँचा दिये।

अब युद्ध का प्रारम्भ हो गया। एक तरफ जम्बूकुमार अकेले थे, दूसरी तरफ अनेक योद्धा थे। कुमार ने अपनी भुजाओं के बल से कितने ही योद्धाओं को मारा। तब व्योमगति विद्याधर ने अपनी तीक्ष्ण खडग कुमार को अर्पण की। यह भी कहा कि तुम विमान पर चढ़ जाओ। कुमार ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वह योद्धाओं के साथ लड़ने में अपने शरीर को तृण के समान समझता था, कहा है—

ब्रह्मचारी तृणं नारी, शूरस्य मरणं तृणम्।
दातुश्चापि तृणं लक्ष्मी, निस्पृहस्य तृणं जगत्॥210॥

भावार्थ – ब्रह्मचारी के लिये स्त्री तृण के समान है, योद्धा के लिये मरण तृण के समान है, दातार के लिये लक्ष्मी तृण के समान है, इच्छारहित को यह जगत तृण के समान है।

जम्बूकुमार का युद्ध

कुमार ने खड्ग से चारों तरफ से योद्धाओं को मार मार के गिरा दिया। योद्धाओं के शस्त्र कुमार पर वृथा ही पड़ते थे। उन सबको चतुराई से कुमार बचाता था। वज्रमयी शरीरधारी का देह उन शस्त्रों से जरा भी नहीं भेदा गया। ऐसी सावधानी से व चतुराई से कुमार ने युद्ध किया कि रत्नचूल के योद्धा उसके सामने ठहर नहीं सके। जैसे एक ही सूर्य सर्व अन्धकार को नाश कर देता है, वैसे अकेले प्रतापशाली कुमार ने शत्रुदल को भगा दिया। इतने ही में किसी गुप्तचर ने जाकर मृगांक राजा से कहा कि हे देव! आपके पुण्य के उदय से कोई महापुरुष आया है जो शत्रु की सेना के जलाने को दावानल के समान है। यह बड़ी

चतुराई से युद्ध कर रहा है। वह आपका कोई बन्धु है या पूर्वजन्म का मित्र है, या श्रेणिक राजा ने किसी वीर योद्धा को भेजा है। इन वचनों को सुनकर मृगांक राजा के शरीर में आनन्द से रोंए खड़े हो गये। तब वह मृगांक भी अपनी सब सेना को सजाकर युद्ध के लिये नगर से बाहर निकला। उसी सेना की बाजों की ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान हो गया। क्रोधाग्नि से जलता हुआ युद्ध करने को सामने आया। इस तरह दोनों तरफ की सेनाओं में भयंकर युद्ध चल पड़ा। हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, रथ रथों से, विद्याधर विद्याधरों से परस्पर भिड़ गये।

इस भयंकर युद्ध का वर्णन हम क्या करें? रुधिर की धारा से समुद्र ही हो रहा है। जिनकी छाती भिद गयी है, वे उसको पार करके शत्रु के ऊपर जा नहीं सकते थे। घोड़ों के खुरों की धूल आकाश में छायी हुई है, जिससे दिन में भी रात्रि का अनुमान होता है। कहीं योद्धा एक-दूसरे का नाम लेकर ललकार रहे हैं। रथों के चलने की हाथियों की घंटियों की व उनके दहाड़ने की, धनुषें की टंकार की, योद्धाओं के रे रे शब्द की महान ध्वनि हो रही है। कहीं योद्धा, कहीं गज, कहीं रथ भंग पड़े हैं। तलवार, कुन्त, मुद्गर, लोहदण्ड आदि शस्त्रों से सैकड़ों के सिर चूर्ण हो गये हैं। कितनों ही की कमर टूट गयी है, आकाश में पवनादि के कारण तलवार बिजली सी चमक रही है।

ऐसा महान युद्ध हो रहा है कि वहाँ अपना पराया नहीं दिखता है। कहीं भूमि में आंतें पड़ी हैं, कोई बालों को फैलाये मूर्च्छित पड़े हैं, कोई किसी के केशों को पकड़कर मार रहा है। सिर से रहित धड़ भी जहाँ युद्ध के लिये नाचते थे। कुमार व

रत्नचूल दोनों आकाश में विमानों पर युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामी ने रत्नचूल का विमान तोड़ दिया तब वह भूमि पर आ गया। जैसे ही यह भूमि पर गिर पड़ा, तब हाथी पर चढ़े मृगांक ने महावत को पूछा कि किसको किसने मारा ? तब उसने कहा कि पराक्रमी जम्बूकुमार ने रत्नचूल को भूमि पर गिरा दिया। इतने में कुमार ने रत्नचूल को दृढ़ बाँध लिया। राजा के बाँधे जाने पर रत्नचूल की सब सेना भाग गयी। तब राजा मृगांक ने व उसकी ओर के विद्याधरों ने जम्बूकुमार की प्रशंसा की। चारों तरफ जय-जयकार शब्द हो गया। कहने लगे—

धन्योऽस्ति त्वं महाप्राज्ञ, रूपनिर्जितमन्मथ।
क्षात्रधर्मस्य चौन्नत्यमद्य, जातं त्वया कृतम्॥252॥

भावार्थ - हे महाबुद्धिवान ! कामदेव के रूप को जीतनेवाले कुमार तू धन्य है। तुमने आज क्षत्रिय धर्म के ऐश्वर्य को भले प्रकार प्रगट कर दिया। केरल राजा की सेना में जीत के नगारे बजने लगे। बन्दीजन कुमार के यश कहने लगे। व्योमगति विद्याधर ने जम्बूकुमार का मृगांक के साथ बहुत प्रेम करा दिया।

घुटनों तक लम्बी भुजाधारी जम्बूकुमार ने आठ हजार विद्याधरों को लीला मात्र में जीत लिया। यह सब पुण्य का माहात्म्य है। उस पुण्य के उदय से ही कुमार ने जय लक्ष्मी प्राप्त की। इसलिये जिनको सुख की इच्छा है, उनको एक धर्म का सेवन सदा करना योग्य है। कहा है—

एक एव सदा सेव्यो, धर्मो सांख्यमभीप्सुमिः।
यद्विपाकात्कुमारेण, जयश्रीः किंकरीकृता॥257॥

सातवाँ अध्याय

जम्बूस्वामी व श्रेणिक महाराज का राजगृह में प्रवेश

मैं शुद्ध भावों को रखनेवाले निर्मल ज्ञानधारी विमलनाथ की स्तुति करता हूँ तथा अपने गुणों की प्राप्ति के लिये अनन्त वीर्यवान अनन्तनाथ भगवान को वन्दन करता हूँ।

जम्बूकुमार की वैराग्यपूर्ण आलोचना

जम्बूकुमार ने जब भयानक युद्ध क्षेत्र को देखा तब मन में दया-भाव पैदा हो गया—विचार करने लगे, संसार की अवस्था अनित्य है। अहो! जल का स्वभाव शीतल है परन्तु अग्नि के संयोग से उष्ण हो जाता है, परन्तु स्वरूप से तो जल शीतल ही है। शीतलता जल का गुण है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव शान्त है, कषाय के उदय से मोहित हो जाता है। ज्ञानवान पुरुषों ने इस संसार की स्थिति को उच्छिष्ट (झूठन) मान के इसका मोह त्याग किया है, परन्तु जो अज्ञान से व मान से अन्ध है, वे मर के दुर्गति को जाते हैं। जो प्राणी इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होते हैं, वे इसी तरह मरते हैं जैसे पतंगा स्वयं आकर अग्नि में पड़कर मर जाता है। एक तो विषयों का मिलना दुर्लभ है, कदाचित् इच्छित विषय प्राप्त भी हो जावें तो उन विषयों के भोग से तृष्णा की आग बढ़ती ही जाती है। विषय किंपाक फल के समान हैं—सेवते अच्छे लगते हैं, परन्तु इनका फल कडुवा है। ऐसा होने पर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बड़े-बड़े ज्ञानी भी इन विषयों का सेवन करते हैं।

वास्तव में यह मोहरूपी पिशाच बड़ा भयंकर है, महान पुरुषों को भी इससे पीछा छुड़ाना कठिन है। इस मोह के उदय से यह प्राणी पर को अपना माना करता है। जैसे मृग जंगल में मरीचिका (चमकती हुई घास या बालू) को जल समझकर पानी पीने के लिये दौड़ते हैं, जल न पाकर अधिक तृष्णातुर हो जाते हैं, वैसे मोही प्राणी अज्ञान से विषयों से सुख होगा ऐसा जानकर विषयों को भोगने के लिये दौड़ते हैं, परन्तु अधिक ताप को बढ़ा लेते हैं। जो मिथ्यात्व अन्धकार से अन्ध हैं, वे ही इन्द्रियों से विषयों से सुख मानते हैं। जैसे कोई अग्नि को ठण्डा करने के लिये शीघ्र ईंधन डाल दे वैसे ही अज्ञानी तृष्णा की दाह को शमन के लिये विषयों के सामने जाता है, उल्टा अधिक तृष्णा को बढ़ा लेता है। उस चतुराई को धिक्कार हो जो दूसरों को उपदेश करे व अपने आत्मा के हित का नाश करे। उस आँख से क्या लाभ, जिसके होते हुए भी गड्ढे में गिर पड़े। उस ज्ञान से भी क्या, जो ज्ञानी होकर विषयों के भीतर पड़ जावे।

अहो! मैं भी तो ज्ञानी हूँ, मुझ ज्ञानी ने भी प्रमाद के वश होकर यश पाने की इच्छा से घोर हिंसाकर्म कर डाला। शास्त्र कहता है कि अपने प्राण जाने पर भी किसी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिए। मुझ निर्दयी ने तो आठ हजार योद्धाओं को मारा है। वास्तव में ऐसा ही कोई शुभ या अशुभ कर्मों का उदय आ गया। कर्म के तीव्र उदय को तीर्थंकर भी निवारण नहीं कर सकते। जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से स्वच्छ है तो भी रक्त पीत आदि उपाधि के बल से रक्त पीत आदि रंग के भाव को प्राप्त हो जाती है। वैसे ही यह जीव स्वभाव से चैतन्यमयी है व अतीन्द्रिय

सुख का धारी है। संसार में रहता हुआ कर्मों के उदय से अहंकार आदि नाना भावों में परिणमन कर जाता है। कहा है—

जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम्।
तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्वेच्छता यशश्चथम्॥18॥

प्राणान्तेऽपि न हंतव्यः प्राणी कश्चिदिति श्रुतिः।
मया चाष्टसहस्त्रास्ते हता निर्दयचेतसा॥19॥

आफलोदयमेवैतत्कृतं कर्म शुभाशुभम्।
शक्यते नान्यथा कर्त्तुमातीर्थापधिपतीनपि॥20॥

यत्स्फाटिकोमणिः स्वच्छः स्वाभावादिति भावतः।
सोऽप्युपाधिबलादेव रक्तपीतादि का व्रश्रेत्॥21॥

तथा यं चित्स्वभावोऽपि जीवोऽतीन्द्रियसौख्यवान्।
धत्तें मानादिनानात्वमुदयादिह कर्मणाम्॥22॥

(**नोट** – सम्यग्दृष्टि गृहस्थ का ऐसा ही भाव रहता है। वह कषायों को न रोक सकने के कारण गृहस्थ सम्बन्धी काम युद्धादि करता है, परन्तु अपनी निन्दा गर्हा किया करता है। कर्म की तीव्र प्रेरणा से काम करता है। आपको स्वभाव से अकर्ता व अभोक्ता ही समझता है।)

जब तक जम्बूकुमार अपने मन में कार्य की आलोचना कर रहे थे, तब तक रत्नचूलादि राजा इस प्रकार कह रहे थे कि गुण स्वयं निर्गुण होने पर भी अर्थात् गुण में दूसरा गुण न होने पर भी वे गुण किसी द्रव्य के ही आश्रय पाये जाते हैं। हे स्वामी! आप बड़े गुणवान हैं, आपमें ऐसे गुण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता है। दूसरे लोग पर की सहायता से जय प्राप्त करने पर भी अभिमान

से उद्धत हो जाते हैं। आपने बिना किसी की सहायता से केवल अपने ही पराक्रम से विजय प्राप्त की है तब भी आप मदरहित व रागरहित हैं। जिस वृक्ष में आम के फल लदे होते हैं, वही झुकता है, फलरहित वृक्ष नहीं झुकता है। सौम्यमूर्ति! आपके समान कौन महापुरुष है जो विजयलाभ करके भी शान्त भाव को धारण करे?

इस तरह परस्पर अनेक राजा स्वामी की तरफ लक्ष्य करके बातें कर रहे थे कि इतने में अकस्मात् व्योमगति विद्याधर बोल उठा—हे स्वामी जम्बूकुमार! जब आप युद्ध में वीरों का संहार कर रहे थे तब इस मृगांक राजा ने भी अपना पुरुषार्थ प्रगट किया था। आपके सामने हे स्वामी! मैं क्या कह सकता हूँ, आपका पुरुषार्थ तो वीरों से प्रशंसनीय है। जैसा मैंने सुना था वैसा मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। मृगांक की प्रशंसा सुनकर रत्नचूल क्रोध में आकर कहने लगा। रत्नचूल इस मिथ्या कथन के भार को सह नहीं सका।

रत्नचूल को अपनी हार होने से जितना दु:ख नहीं हुआ था, उससे अधिक दु:ख मृगांक के बल की प्रशंसा सुनने से व उसके मिथ्या अहंकार से हो गया। कहा है—जो गुणरहित है, वह गुणी को नहीं मान सकता है। गुणवान गुणी को जानकर ईर्ष्याभाव कर लेता है। वास्तव में इस जगत में महान गुणी भी विरले हैं, व गुणवानों के साथ प्रीति करनेवाले भी विरले हैं। हे व्योमगति विद्याधर! तू बुद्धिमान है, तुझे ऐसे मृषा वचन नहीं कहने चाहिए। कहीं आकाश के फूलों से वन्ध्या के पुत्र का मुकुट बन सकता है? मेरी सेना बड़े-बड़े पराक्रमी योद्धा से भी नहीं जीती जा सकती थी, उसको केवल स्वामी जम्बूकुमार ने ही जीती है।

यदि यह एक वीर योद्धा संग्राम में नहीं होता तो मैं क्या कर सकता था सो तुम देख लेते। अभी भी यदि मृगांक को गर्व है तो वह आज भी मेरे साथ युद्ध कर सकता है। हम दोनों यहाँ ही पर विद्यमान हैं। कुमार इस बीच में माध्यस्थ रहे। केवल तमाशा देखने लगे कि क्या होता है।

मृगांक व रत्नचूल का युद्ध

रत्नचूल के वचनों को सुनकर मृगांक को भी क्रोध आ गया। ईधनों को रगड़ने से धुआं निकलता ही है। कहने लगा— हे रत्नचूल! जैसा तू चाहता है वैसा ही हो। काला भी सुवर्ण अग्नि में भिड़ने पर शुद्ध हो जाता है। अब तू विलम्ब न कर। ऐसा कहकर युद्ध के लिये तैयार हो गया। कुमार ने रत्नचूल को छोड़ दिया। दोनों में परस्पर युद्ध छिड़ गया।

कुमार मौन से बैठे हुए तमाशा देखने लगे। कुमार ने विचार किया कि बीच में बोलना ठीक नहीं होगा। माध्यस्थ रहना ही सुन्दर है। यदि मैं मृगांक को मना करता हूँ तो इसके बल की लघुता होती है और मैं मृगांक का पक्ष लेता हूँ ऐसा रत्नचूल विपक्षी को होगा। यदि मैं रत्नचूल को मना करता हूँ तो भी रत्नचूल को घमण्ड हो जाएगा। रत्नचूल और मृगांक दोनों ने कुमार को नमस्कार किया और रणक्षेत्र में युद्ध करने लगे। दोनों ओर की सेना के योद्धा सावधानी से लड़ने लगे। चारों प्रकार की सेना परस्पर भिड़ गयी। दोनों ने अहंकार में भरकर राम-रावण के समान घोर युद्ध किया। साधारण शस्त्रों से युद्ध किये जाने पर कोई नहीं हारा। तब रत्नचूल ने क्रोधवान होकर विद्यामयी युद्ध प्रारम्भ किया। मृगांक भी विद्यामयी युद्ध में सावधान हो गया।

रत्नचूल ने सब सेना में ऐसी धूल फैला दी कि मृगांकी सेना व्याकुल हो गयी। तब मृगांक ने पवन के शस्त्र से उस धूली को उड़ा दिया। तब अग्निबाण चलाकर रत्नचूल ने सेना में आग लगा दी। तब मृगांक ने जल की वर्षा करके अग्नि को शान्त किया। इस तरह विद्यामयी शस्त्रों से बहुत देर तक युद्ध हुआ। अन्त में रत्नचूल ने नागपाश से मृगांक को बाँध लिया। अपने को विजयी मानकर व मृगांक को दृढ़ बँधनों से बाँधकर रणक्षेत्र से जाने लगा। तब जम्बूस्वामी ने तुरन्त मना किया।

हे मूढ़! मैं मृगांक के साथ हूँ, मेरे होते हुए तू इसे कहाँ लिये जा रहा है? शेषनाग के सिर की उत्तम मणि को कौन ले सकता है? काल के मुख से कौन अपने को बचा सकता है? महा मेरु पर्वत को कौन हाथ से हिला सकता है? सिंह की शैय्या पर सोकर कौन जी सकता है? इस तरह तू मेरे रहते हुए घर में जाकर सुख से रहना चाहता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। तुझे लज्जा भी नहीं आती है? जम्बूकुमार यह कह ही रहे थे कि रत्नचूल जम्बूस्वामी के सामने युद्ध करने को तैयार हो गया। तब कुमार ने कहा कि—यदि तू युद्ध करना चाहता है तो मुझे अकेले से युद्ध कर। सेना को भिड़ाने से क्या लाभ है?

रत्नचूल-जम्बूकुमार युद्ध

रत्नचूल ने बात मान ली, तब दोनों तरफ की सेना के योद्धा हट गये। तब ये दोनों ही वीर नाना प्रकार के शस्त्रों से युद्ध करने लगे। रत्नचूल ने कुमार के ऊपर नागबाण छोड़ा, कुमार ने उसी क्षण गरुड़ बाण से निवारण कर दिया। तब रत्नचूल ने अग्निबाण चलाया। कुमार ने जल की वर्षा करके अग्नि को बुझा दिया और

रत्नचूल को तोमर शस्त्र मारा। तब रत्नचूल ने हाथ में चक्र उठाकर कुमार के मारने को फिराया। तब शीघ्र ही कुमार ने बाण चलाकर उस चक्र के टुकड़े कर दिये। उस चक्र के टुकड़े बिजली के घात के समान विद्याधर के कन्धे पर पड़े। शरीर के अंग उसके घात से चूर्ण होते देखकर विद्याधर जमीन पर उतरा और क्रोधी होकर कुन्त नाम के शस्त्र को हाथ में ले लिया। कुमार भी शीघ्र ही हाथी से उतर पड़े, और रत्नचूल के शरीर में ऐसी जोर से मुट्ठी मारी जिससे वह भूमि पर पड़ गया। फिर कुमार ने रत्नचूल को बाँध लिया। तब मृगांक राजा को शीघ्र ही बन्धन से छुड़ाया। वह मृगांक राजा शरद काल में मेघरहित सूर्य के समान शोभने लगा।

आकाश में देवों ने कुमार पर पुष्पवृष्टि की। दुन्दुभि बाजे बजाये। जय-जयकार शब्द किये। वास्तव में पुष्परूपी वृक्ष के मीठे ही फल होते हैं।

जम्बूकुमार का केरल प्रवेश

तब मृगांक राजा ने वादित्रों की ध्वनि के साथ अन्य राजाओं को लेकर जम्बूकुमार को केरल नगर के भीतर प्रवेश कराया। उस समय व्योमगति विद्याधर को जो सन्तोष व सुख हुआ वह कहा नहीं जा सकता है। नगर में कुमार की सवारी आ रही है, तब नगर की युवतियों ने अनुराग से कुमार के ऊपर फूलों की वर्षा की। कोई स्त्रियाँ हर्ष के मारे मंगल गीत गाने लगीं। तथा परस्पर बात करने लगीं—

हे सखी! देखो, यही जम्बूकुमार हैं जिन्होंने लीलामात्र में रत्नचूल विद्याधर को जीत लिया। कोई कहने लगी कि यह

कुमार सदा जीवें, इसी ने शत्रुओं को मारकर हमारे सौभाग्य की रक्षा की। इस नरसिंह की माता सेठ अरहदास की पत्नी **जिनमती** धन्य है, जिसने गर्भ में दश मास रखा। वह श्रेणिक राजा धन्य है जिसका यह उत्तम योद्धा है, जिस अकेले ने हजारों योद्धाओं का खण्डन कर दिया।

मार्ग के बाजारों में व गलियों में व्यापारियों के कुमारों ने बड़ी शोभा बना दी थी। स्वामी देखते-देखते राजमहल के द्वार पर तोरण के पास पहुँच गये। वहाँ पर रत्न व मोतियों से अपूर्व शोभा की गयी थी। कुछ देर कुमार देखते-देखते ठहर गये। फिर धीरे-धीरे कुमार राजमन्दिर के भीतर गये। जम्बूकुमार को जो देखता था, वह आनन्दमय हो जाता था। राजा मृगांक ने जम्बूस्वामी की सेवक की भाँति बड़ी सेवा की, उनकी स्नानादि क्रिया करायी व नाना प्रकार रसीले भोजन तैयार कराकर कुमार को तृप्त किया। कुमार ने सुन्दर भोजनों से परम सन्तोष प्राप्त किया। तब मृगांक ने ताम्बूल दिया व चन्दनादि सुगन्ध द्रव्य लगाया। बहुत बड़ा सत्कार किया।

रत्नचूल को कुमार ने छोड़ दिया

फिर राजसभा में बैठकर दयावान कुमार ने रत्नूचल विद्याधर को बन्धन से मुक्त किया। फिर कामविजयी कुमार ने बड़े सुन्दर कोमल वचनों से विद्याधर को सन्तोषित किया—हे विद्याधर! युद्ध में जय पराजय तो होती ही है, यह क्षत्रियों का धर्म है, इसमें विषाद न करना चाहिए। अब तुम अपने घर में सुख से जाओ। और परिवार के साथ रहकर सुख भोगो। रत्नचूल ने नम्र वचनों का कहा—हे स्वामी! मैं आपके साथ चलकर श्रेणिक महाराज

का दर्शन लाभ करना चाहता हूँ।

कुमार का प्रस्थान

कुछ दिन कुमार वहाँ ठहरे, फिर विमान पर चढ़कर श्रेणिक राजा के पास चले। मृगांक भी अपनी रानी को लेकर व विशालवती सती कन्या को विवाहाने के लिये लेकर चला। भक्तिवान रत्नचूल भी चला। और पाँच सौ विद्याधर योद्धा विमानों पर चले। व्योमगति विद्याधर हर्षित-चित्त होकर अपने विमान पर बैठकर कुमार के पीछे-पीछे चलने लगा। आकाश विमानों से छा गया। चलते-चलते वे सब कुरल पर्वत पर आये, जहाँ श्रेणिक महाराज राजमण्डल के साथ विराजमान थे।

श्रेणिक से भेंट

विमानों को आकाश में स्थापन करके मृगांक आदि सब विद्याधर उतरे। जम्बूकुमार उन सबको श्रेणिक राजा के पास लाये। श्रेणिक महाराज ने दूर से आते देखा तो शीघ्र ही सिंहासन से उठे और बड़े आदर से कुमार को गले लगाया और कहने लगे कि बहुत दिनों के पीछे आज तुम्हें देखकर मेरे हृदय में बड़ा ही हर्ष उत्पन्न हो गया। तब व्योमगति विद्याधर ने सर्व वृत्तांत श्रेणिक से निवेदन किया। और जो-जो महानुभाव पधारे थे, उनको अपने हाथ से बताकर उनके नाम सुनाये। हे देव! यह राजा मृगांक है, जो आपको अपनी कन्या देते हैं। यह उनकी पटरानी मालतीलता है। यह विद्याधरों में मुख्य रत्नचूल है, जिनको बड़े-बड़े योद्धा नहीं जीत सकते थे, परन्तु कुमार ने उन्हें जीत लिया।

इन वचनों को सुनकर श्रेणिक राजा का आनन्द उसी तरह

बढ़ गया, जिस तरह चन्द्रमा के उदय से समुद्र बढ़ जाता है। तब श्रेणिक ने कुमार की बार-बार प्रशंसा की। जिससे उपकार पहुँचा हो उसकी तरफ राजा का स्वभाव से ही मृदु भाषण होना ही चाहिए।

श्रेणिक का विशालवती से विवाह

तब मृगांक ने अपनी कन्या विशालवती वहीं श्रेणिक को अर्पण कर दी। विवाह का उत्सव होने लगा। विद्याधरों को बड़ा हर्ष हुआ। स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं। प्रतापशाली श्रेणिक ने मृगांक और रत्नचूल का मैत्रीभाव करा दिया। तब श्रेणिक ने सर्व विद्याधरों का यथोचित सन्मान करके विदा किया। सब जन लौट गये! व्योमगति विद्याधर भी अपने स्वामी का कार्य सफल करके अपने को कृतकृत्य मानता हुआ अपने स्थान गया।

रघुरावकुमार का राजगही आना

मगधराज श्रेणिक विशालवती को लेकर राजगृही की तरफ चले। कुमार भी साथ थे। चलते हुए राजा ने विन्ध्याचल पर्वत के जंगल को उल्लंघा। मार्ग में राजा नवीन वधू के साथ वार्तालाप करते हुए जा रहे थे। हे मृगनयनी देख, वे मृग-समूह तेरे नेत्रों को ईर्ष्या से देखने के लिये आये हैं। हे वाले! इन सुन्दर हाथी के समूहों को देख, जिनकी उपमा तेरे गमन को दी जाती है। हे कृश कटिवाली!

इस सिंहनी को देख, जिसको तूने अपनी कमर से जीत लिया है। हे सुन्दर स्तनधारिके! तू इन शुकरों को देख, जो ऊँचा मस्तक किये हुए हैं। हे विशालाक्षी! इन बन्दरों के समूहों को

देख, जिनकी चंचलता को तेरे चित्त के चमत्कार ने जीत लिया है। हे कोकिलावचनी! इन कोयलों की ध्वनि सुन, तेरी वाणी ने उनके स्वरों को तिरस्कार कर दिया है।

वन की शोभा

हे मृदुभाषिणी! इस तरफ तू हंस का रुदन सुन जो हंसनी से मिलने के लिये उसे याद कर रहा है। हे सुन्दरी! सरोवर के तटों पर बगुलों की पंक्ति को देख। तेरे कण्ठ में मोतियों की माला जैसी है, वैसे वे शोभते हैं। हे चकोर नयनी! उस चक्र-युगल को देख जो चन्द्रमा के उदय की शंका से तेरे मुख को देख रहा है। स्नेह बढ़ानेवाली चातक की ध्वनि सुन जो परम प्रीति से प्रिये, कहकर रटन लगा रही है। हे मनमोहने! आम्र वृक्षों में लगी हुई पीली-पीली मंजरी को देख, जो तेरे कर्ण के सुवर्ण आभूषणों के साथ स्पर्श कर रही है। इस वन के भीतर भ्रमर समूह गुंजार कर रहे हैं। मानों तेरे गुण के स्तोत्र रूप में अक्षरों को ही लिख रहे हैं। मोरों की ध्वनि को सुन, जो दूर से हो रही है, वे सेना की रज से आकाश को छाया हुआ देखकर मेघ की ही शंका कर रहे हैं। हे कमलनयने! इन कमलों की पंक्ति को देख, जो भ्रमरों से शोभायमान है। तेरे मुख की शोभा उनको जीत रही है। हे प्रिये! कोमल पत्तों से शोभित बेलों को देख, जिसके पत्ते तेरे हाथ के स्पर्श से स्पर्श कर रहे हैं। अर्थात् तेरे हाथ का स्पर्श पत्तों के स्पर्श से भी अधिक कोमल है। हे कान्ते! इन पुष्पों की बहार को देख, जो तेरे मुख को देखकर आनन्द में भरकर प्रफुल्लित हो रहे हैं। इस तरह अपनी प्रिया विशालवती को भोग की शोभा बताते हुए राजा श्रेणिक राजगृह नगर पहुँच गये।

सुधर्माचार्य का दर्शन

राजगृह के उपवन में राजा श्रेणिक सेना सहित कुछ देर ठहरे। देखते क्या हैं कि उस वन में पाँच सौ शिष्य मुनियों से वेष्टित सुधर्माचार्य मुनि धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हैं। महा भाग्यवान राजा ने सस्त्रीक कुमार सहित तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को नमस्कार किया। राजा श्रेणिक गुरु महाराज का दर्शन पाकर अपना जन्म सफल मानने लगा। दर्शन करके राजा श्रेणिक सेना सहित अपने राजमहल में जाने के लिये नगर के भीतर चल पड़ा। राजलक्ष्मी व जयलक्ष्मी को लिये हुए राजा ने बड़ी शोभा के साथ राजमन्दिर में प्रवेश किया। कहा है—

धर्मकल्पद्रुमः सेव्यः किमयैर्बहुजल्पितैः।
यत्पाकादर्थकामादिफलं स्यात्पावनं महत्॥145॥

भावार्थ : और अधिक क्या कहें धर्म कल्पवृक्ष के समान चिन्तित फलदायक है, इसकी सेवा सदा करनी चाहिए। धर्म के ही फल से धन की व कामादि भोगों की प्राप्ति होती है। धर्म ही से महान पुण्यबन्ध होता है और फलता है।

आठवाँ अध्याय

जम्बूस्वामी विवाहोत्सव

धर्म की सिद्धि के लिये धर्म तीर्थ के स्वामी श्री धर्मनाथ तीर्थंकर की स्तुति करता हूँ तथा आठ कर्मों की शांति के लिये श्री शान्तिनाथ को नमस्कार करता हूँ।

जम्बूकुमार का पूर्वजन्मवृत्त श्रवण

श्री जम्बूकुमार ने अपने मन में विचार किया कि किस पुण्य के उदय से मैंने यश और लक्ष्मी प्राप्त की है, तब इस प्रश्न का समाधान पाने के लिये वह श्री सुधर्माचार्य के पास आया और विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। अवसर पाकर कहने लगा—हे मुनिनाथ! कृपाकर मेरा संशय छेद कीजिए। मैं किस पुण्य के उदय से यहाँ जन्मा हूँ, मैं कौन था, कहाँ से आकर जन्मा हूँ? हे स्वामी! आप तो वीतरागी हैं, सुख-दुःख में समान हैं, आप शत्रु-मित्र में समदर्शी हैं, जीवन-मरण में सम हैं, स्तुति व निन्दा में सदृश हैं, हरिचन्दन की सुगन्ध के समान शान्त हैं। तो भी आपके मुखारविनद से अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ। मुनिराज! आप भक्तवत्सल हैं, संसार-सागर से तारनेवाले हैं, आप जीवन्मुक्त हैं, व सर्व जन्तुओं पर दयालु हैं। तब धर्माचार्य सौधर्म मुनि कहने लगे—हे वत्स! तेरे पूर्वजन्म का वर्णन करता हूँ, तू सुन।

इसी मगध देश में वर्द्धमान नाम का बड़ा ग्राम था। उसमें दो निकट भव्य ब्राह्मण रहते थे। बड़े का नाम भावदेव था और छोटे

का नाम भवदेव था। क्रम से दोनों ने सर्व सुखदायी जैन धर्म की दीक्षा धार ली। समाधिमरण से वे दोनों मर के सनत्कुमार स्वर्ग में देव उत्पन्न हुए। आयु के अन्त होने पर वहाँ से च्युत होकर बड़े भाई भावदेव का जीव वज्रदन्त राजा का पुत्र सागरचन्द्र हुआ। छोटा भवदेव का जीव महापद्म चक्रवर्ती का पुत्र शिवकुमार पैदा हुआ। दोनों ही ने घोर तप व व्रत पाले। दोनों समाधि से मरके छट्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव हुए। भवदेव का जीव श्रीप्रभविमान में और भावदेव का जीव जलकान्त विमान में देव हुआ।

वहाँ दस सागर की आयु भोग करके दोनों में से भावदेव का जीव भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुआ। यही मगध देश अनेक नगरों से शोभायमान है। यह जैन धर्म का स्थान है। वहाँ निरन्तर मुनिविहार करते हैं।

इस देश में संवाहनपुर सुन्दर नगर है, जहाँ उत्तम महिलाओं से शोभित पंक्तिबन्द घर हैं। उस नगर का राजा सुप्रतिष्ठित था, जो जैन धर्म में कमल के भीतर भ्रमर के समान आसक्त था। उसकी धर्मात्मा पटरानी रूपवती थी। वह शीलवती थी, सुन्दरता व गुण की खान थी। भावदेव का जीव वह छट्ठे स्वर्ग से आकर इस पटरानी के सौधर्म नाम का पुत्र हुआ, जो क्रम से बढ़कर थोड़े ही वर्षों में सर्व शास्त्रों का ज्ञाता हो गया। कुमारवय में ही घर में दीपक के समान शोभता था।

एक दिन सुप्रतिष्ठित राजा पटरानी सहित श्री महावीर भगवान के समवसरण में वन्दना के लिये पधारे। श्री वर्द्धमान भगवान के मुखकमल से धर्मोपदेश सुना। सुनकर उसका मन भोगों से उदास हो गया। अपने मन में विचारने लगा कि यह संसार असार है,

चंचल है, धनादि सब जल के बुद-बुद के समान क्षणिक हैं। उसी दिन उस राजा ने आठ कर्मों को नाश करके के लिये सर्व परिग्रह त्याग कर स्वर्ग व मोक्ष-सुख को देनेवाली निर्ग्रंथ की दीक्षा को ग्रहण कर लिया। कुछ दिनों के पीछे सुप्रतिष्ठ मुनि सर्व श्रुत के पारगामी हो गये। तथा वर्द्धमान जिनेश्वर के ग्यारह गणधरों में चौथे गणधर हुए।

अपने पिता गणधर को एक दिन देखकर सौधर्म ने भी कुमार वय में वैराग्यवान हो, मुनिपद को स्वीकार कर लिया। वह फिर श्री वीर भगवान का पाँचवाँ गणधर हो गया।

वही मैं तेरे सामने भावदेव का जीव सुधर्म नाम का बैठा हूँ और तू भवदेव का जीव है। ऐसा तू अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान।

हे वत्स! संसारी जीव कर्मों के आधीन होकर अपने कर्म विनाशक वीतराग भाव को न पाते हुए संसार में भ्रमण किया करते हैं। तुम छट्ठे स्वर्ग में विद्युन्माली देव थे, सो वहाँ से आकर सेठ अर्हदास के सुखकारी पुत्र हुए हो। तेरी स्वर्ग की चारों देवियाँ भी वहाँ से च्युत होकर सागरदत्त आदि श्रेष्ठियों की चारों पुत्रियाँ जन्मी हैं। उन चारों के साथ तेरा विवाह होगा। वे पूर्व स्नेहवश ही तेरी चार भार्या होंगी।

जम्बूकुमार का वैराग्य

मुनिराज के मुख से अपना भवान्तर सुनकर जम्बूस्वामी कुमार के मन में तीव्र वैराग्य बढ़ गया। विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा कि मैं संसार शरीर भोगों से विरक्त हो गया हूँ। आप मेरे

बिना कारण परम बन्धु है। आप मेरा संसार सागर से उद्धार कीजिए। कृपा करके मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा प्रदान कीजिए, मेरी इच्छा भोगों में नहीं है, आत्मा के दर्शन की ही भावना है। कुमार की वाणी को सुनकर महामुनि समाधानकारी वचन सौम्य मुख से कहने लगे। वह अवधिज्ञान के बल से जान गये कि वह अति निकट भव्य है। भाषा समिति की शुद्धि से कोमल वाणी प्रगट करने लगे। हे वत्स! तेरी अवस्था क्रीड़ा करने योग्य है। कहाँ तेरी वय और कहाँ तेरा यह कठिन दीक्षा का श्रम जो महान पुरुषों से भी कठिनता से पालने योग्य है। यदि तेरे मन में दीक्षा लेने की तीव्र उत्कण्ठा है तो तू अपने घर में जा। वहाँ बन्धुवर्गी को पूछकर उनका समाधान करके परस्पर क्षमाभाव करा दे, फिर लौटकर उस कर्म क्षयकारी निर्ग्रंथ दीक्षा को ग्रहण कर। यही पूर्वाचार्यों के द्वारा बताया हुआ दीक्षा लेने का क्रम है।

सौधर्मसूरि के वचनों को सुनकर जम्बूकुमार विचारने लगा कि यदि मैं अपने भीतरी हठ से घर नहीं जाता हूँ तो गुरु की आज्ञा का कोप होना ठीक नहीं होगा। इससे मुझे शीघ्र ही अपने घर अवश्य जाना चाहिए। पीछे लौटकर मैं अवश्य इस दीक्षा को ग्रहण करूँगा। ऐसा मन में निश्चय करके कुमार ने सौधर्म गुरु को नमस्कार किया और अपने घर प्रस्थान किया। घर पहुँच करके कुमार ने अपनी माता जिनमती को बिना किसी गुप्त बात को रखे हुए अपने मन का सर्व हाल जैसा का तैसा कह दिया— हे माता! मैं अवश्य इस संसार मैं वैराग्यवान हुआ हूँ, अब तो मैं अपनी हथेली में रखा हुआ ही आहार ग्रहण करूँगा।

इस वार्तालाप को सुनकर सती जिनमती काँपने लगी जैसे

मानों पवन का झोंका लगा हो। फलैसे कमलिनी मुरझा जाती है, इस तरह जिनमती उदास हो गयी। कहने लगी—हे पुत्र! ऐसे वज्रपात के समान कठोर वचन क्यों कहे? इस कार्य के होने में अकस्मात् क्या कारण हुआ है सो कह! तब कुमार ने समाधान करते हुए जो कुछ सुधर्माचार्य ने वर्णन किया था, सो सब कह दिया।

जम्बूकुमार के पूर्वजन्म की वार्ता सुनकर जिनमती के भीतर धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई। चित्त को समाधान करके उसने सेठ अरहदास के आगे सर्व वृत्तान्त कह दिया कि यह चरमशरीरी कुमार है, यह जैन दीक्षा को लेना चाहता है। अरहदास इस वचन को सुनते ही मूर्छित हो गया, महा मोह का उदय आ गया, हाहाकार शब्द रटने लगा। किन्हीं उपायों से सेठजी ने मूर्छा छोड़ी, फिर उठकर इस तरह आकुल हो विलाप करने लगा कि उसका कथन कौन कवि कर सकता है? फिर समाधान—चित्त होकर अरहदास ने एक चतुर दूत को भेजा कि वह यह सब बात समुद्रदत्त आदि सेठों को कहे। वह दूत शीघ्र ही पहुँचा और चारों सेठों को एकत्र कर विवाह का निषेधक निवेदन किया। अन्त में कहा कि आपके समान सज्जनों का समागम बड़े भाग्य से मिला था सो हमारा दुर्भाग्य है कि अकस्मात् विघ्न आ खड़ा हुआ।

शस्त्रपात के समान दु:खदाई इन कठोर वचनों को सुनते ही चारों सेठ काँपने लगे, मन में आश्चर्य हो आया। सोच से आँखों में पानी आ गया, आकुलित होकर कहने लगे—क्या कुमार कहीं अन्य कन्या से विवाह करना चाहते हैं, या कोई और कारण है सो सच सच कहो। तब दूत ने बड़ी चतुराई से यह सच बात

कह दी कि अहो! जम्बूस्वामी तो संसार-समुद्र से शीघ्र तरना चाहते हैं। वह संसार के दु:खों से भयभीत हैं। निश्चय से कामभोगों से उदासीन हैं, उनके भीतर मुक्तिरूपी कन्या के लाभ की भावना है। वे अवश्य जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण करेंगे। इस बात को सुन करके चारों सेठ उदास हो गये। और घर के भीतर जाकर उन कन्याओं को बुलाया और उनको समझाने लगे। वे कन्या मन, वचन, काय से कुलाचार व शीलव्रत को पालनेवाली थीं। हे पुत्री! सुना जाता है, जम्बूकुमार भोगों से उदास हो गये हैं व मोक्ष लाभ के लिये तप पूर्वक व्रत लेना चाहते हैं। जैसी उनकी इच्छा, उनको कौन रोक सकता है? अभी तक हमारी कोई हानि नहीं है, तुम्हारे लिये दूसरा वर देख लिया जाएगा। कहा है—

तद्गृह्णातु यथाकामं का नो हानिस्तु सांप्रतम्।
भवतीनां समुद्वाहे भवेच्चाद्य वगरोऽपर: ॥70॥

कन्याओं की विवाह की दृढ़ता

पिता के वचनों को सुनकर पद्मश्री उसी तरह काँपने लगी जैसे कोई योगी के प्रमाद से प्राणी की हत्या के हो जाने पर योगी का तन कम्पित हो जाता है। पद्मश्री कहने लगी हे पिता! ऐसे लज्जाकारी अशुभ वचन आपको नहीं कहने चाहिए। महात्माओं का धर्म है कि प्राण जाने पर भी लोक मर्यादा को कभी न तोड़े। जैसे सम्यग्दृष्टि महात्मा के लिये सर्व दोषरहित एक अरहन्त आप्त ही देव हैं व एक जिनधर्म ही पूजने योग्य है। वैसे ही मेरे तो एक जम्बूकुमार ही भर्तार हैं। मेरा तो यह पक्का नियम है कि उनके सिवाय मेरा पति कोई नहीं हो सकता है। इन्द्रजाल के

समान विषयभोगों को धिक्कार हो कि पति तो दीक्षा ले जावें और हम उपपति में रत हो। कहा है—

एक एव यथा देवः सर्वदोषविवर्जितः।
अर्हन्निति त (स) दाख्यातो धमश्चैको महात्मनाम् ॥73 ॥

तथा जम्बूकुमारोऽयं भर्ता चैको हि मामकः।
नापरः कश्चिदेवातो नियमो मे निसर्गतः ॥74 ॥

धिमोगान्विषयोत्पन्नानिन्द्रजालोपमानिह।
पतौ गच्छति दीक्षायै वयं तूपपतौ रता ॥75 ॥

(नोट—यहाँ आदर्श चरित्र झलकाया है। जब किसी का विवाह सम्बन्ध पक्का हो जाता है, तब मन से या वचन से विवाह हो जाता है। केवल काल द्वारा सम्बन्ध बाकी रहता है। इसलिए आदर्श शील पालनेवाली कन्याएँ सिवाय जम्बूकुमार के और को अपना स्वामी बनाना शील में दोष समझती हैं।) यदि हमको भोग सम्पदा भोगनी होगी तो हमारे भाग्य के उदय से यह कुमार अवश्य ही घर में रुक जाएँगे। यदि मेरे कर्मों के उदय से भोगों का अन्तराय होगा तो बहुत उपायों से मना करने पर भी वह अवश्य तपोवन को जाएँगे। तो भी मेरे मन को कोई सन्ताप न होगा, क्योंकि जो बात होनेवाली है, इसे कोई और की और नहीं कर सकता है, यह मुझको निश्चय है और अधिक क्या कहूँ ? हे पिताजी ! आप इस सम्बन्ध में अधिक न कहें। मेरे पति तो सर्वथा जम्बूस्वामीकुमार ही हैं।

पुत्री के वचन सुनकर सागरदत्त सेठ ने बाहर आकर वह सब वर्णन दूत को कह दिया। दूत तुरन्त ही अरहदास सेठ के घर गया, और जो कन्या की कथा थी, सर्व सेठ को कह दी। इतने ही

में सूर्य अस्ताचल को चला गया। सन्ध्या का समय हो गया सो ठीक है। सन्त पुरुष पर की विपत्तियाँ देख नहीं सकते। अरहदास सेठ यह न समझ सका कि क्या करना चाहिए। कुमार के पास जाकर प्रार्थना करने लगा कि एक दिन भी आप ठहर जावें, विवाह के पीछे एक दफे भी उन कन्याओं के साथ सहवास करना चाहिए। हे पुत्र! मेरी इस प्रार्थना को निष्फल न कर, पीछे जो तुम्हें रुचे सो करना।

यद्यपि कुमार को विवाह की इच्छा नहीं थी। तथापि पिता के अति आग्रह से उसने यह बात स्वीकार कर ली—कहा कि पिताजी! चित्त में शोक न करो, जो आपकी इच्छा है वह पूर्ण होगी।

विवाहोत्सव

तब उसी समय चारों सेठों को खबर दी गयी। अब अरहदास सेठ के यहाँ व उन चारों सेठों के यहाँ मांगलिक बाजे बजने लगे, आनन्दभेरी बजने लगी। युवती स्त्रियाँ प्रसन्न होकर मंगल गीत गाने लगीं।

कुमार घोड़े पर चढ़ गये। विवाह के योग्य सब सामग्री व सामान साथ लिया। अनेक वादित्रों के साथ कुमार मार्ग में चलने लगे। बन्दीजन जम्बूकुमार का यशगान करते जाते थे। जगत के नर-नारी जगह-जगह कुमार को देखकर हर्षित होते थे। शनैः शनैः कुमार सागरदत्त सेठ के महल पर पधारे। घोड़े से उतरे, विवाह मण्डप में जाकर मौन सहित बैठ गये। विवाह क्रिया होने लगी। बिना इच्छा होते हुए भी कुमार ने पाणिग्रहण के लिये अपना हाथ दे दिया। विवाह के पीछे सागरदत्तादि सेठों ने सुवर्ण रत्नादि सामग्री हर्षपूर्वक दी। नानाप्रकार के सुन्दर वस्त्र, सुगन्धित

द्रव्य, पलंग आदि वस्तु सेठों ने दीं। हाथी, घोड़े, धन, धान्य, दास, दासी आदि जो कुछ उत्तम वस्तु थीं, सो सब स्वामी को भेंट कीं। उन चारों कन्याओं के साथ गठजोड़ा बाँधे हुए कुमार रात को ही स्त्रियों को लेकर बड़े उत्साह के साथ पधारे।

उस समय वर-वधू के घर जाने पर जो कुछ उचित क्रिया थी सो सब अरहदास सेठ ने की। जिसको जो कुछ देना था सो बड़े स्नेह से दिया। जिनमती ने भी अपनी सखियों को व मान्य स्त्रियों को वस्त्र दिये। अपने घर में जितने आये थे, सबका यथायोग्य सम्मान किया। इतने में निद्रा सबकी आँखों में आने लगी। सब शयन करने को चले गये व सखियों ने हर्षित नेत्रों से कुमार को एकान्त भवन में चारों स्त्रियों के साथ बैठा दिया। सुन्दर प्रकाशमान दीपक जलते थे। हंस के समान सफेद रुई की बुनी शय्या पर कुमार चारों स्त्रियों के साथ बैठ गये। स्वामी मौन से विरक्त भाव से बैठे हैं। जैसे कमल का पत्ता जल में अलिप्त रहता है, वैसे स्वामी संसार से विरक्त थे। न तो स्वामी कुछ कहते हैं, न उन स्वरूपवती स्त्रियों की ओर देखते हैं, स्वामी तो तरंग रहित समुद्र के समान परम निश्चल है। जैसे आकाश में तारागणों का समूह निर्मल शोभता है वैसे ही चारों स्त्रियों का दल मोतियों का हार आदि आभूषणों से वेष्ठित शोभता था।

जम्बूस्वामी शयनागार में

उन चार युवतियों के परिणामों में काम की अग्नि प्रज्वलित होने लगी तब वे परस्पर वार्तालाप करने लगीं, अपने काम के अंगों को दिखाने लगीं, कभी हंसने लगीं, स्त्रियों के हावभाव विलास प्रदर्शित करने लगीं, मनोहर गीत गाने लगीं, नाना प्रकार

काम की चेष्टाओं से उद्यम किया कि स्वामी का मन विचलित हो परन्तु स्वामी को जरा भी न डिगा सकीं। स्वामी कैसे थे, कहा है—

इतिसुकृतविपाकात्स्वामिजम्बूकुमारः।
सकलसुखनिधानो मारमातंगसिंहः॥
कृतपरिणयकर्मा धर्ममूर्तिर्विरक्तो।
विषयविरतचेताः स्यात्समासन्नभव्यः॥118॥

भावार्थ :— स्वामी जम्बूकुमार पूर्वकृत पुण्य के उदय से सर्व सांसारिक सुख सामग्री को लाभकर चुके थे। विवाहकम्र भी पिता के आग्रह से कर चुके थे, परन्तु वे अति निकट भव्य थे, धर्ममूर्ति थे, कामदेव रूपी हाथी को जीतने के लिये सिंह के समान थे, संसार से विरक्त थे, इन्द्रियों के विषयभोगों से अत्यन्त उदासीन थे।

नौवाँ अध्याय

जम्बूकुमार का चारों स्त्रियों से वार्तालाप व विद्युच्चर का समागम

कुन्थु आदि क्षुद्र जन्तुओं के दयालु व धर्मतीर्थ के विधाता श्री कुन्थुनाथ को तथा मुक्ति वधू के वर अरनाथ तीर्थंकर को कर्मशत्रुओं के नाश के लिये मैं वन्दना करता हूँ।

जम्बूस्वामी को वैराग्यभाव

इन चारों स्त्रियों की काय की विक्रिया को देखकर जम्बूस्वामी परम ज्ञानी वैराग्य की भावना भाने लगे—मोहनीय कर्म के उदय से होनेवाले इस अज्ञान को धिक्कार हो, जिसके वश में पड़कर संसारी प्राणी दु:खों को ही सुख मान लेते हैं। जैसे वन के मृग प्यासे होकर मरीचिका को अर्थात् चमकती हुई बालू या घास को जल जानकर पीने को दौड़ते हैं, वैसे संसारी प्राणी इन्द्रियों के विषयों में सुख जानकर विषयों की इच्छा करते हैं। जैसे खुजली का रोगी अपने कठोर नाखूनों से खुजाता हुआ अपने शरीर के दु:ख को भूलकर अच्छा मान लेता है, वैसे ये प्राणी इन्द्रियों के भोगों में सुख मान लेते हैं। इन्द्रियाधीन सुख नहीं है, सुख सा दिखता है। यह इन्द्रिय सुख पराधीन है, बाधा सहित है, क्षणभंगुर है व बन्ध का कारण है, इसीलिए महात्माओं ने इसे छोड़ने योग्य कहा है। सच्चा सुख इन्द्रियों की पराधीनता से रहित अतीन्द्रिय है, बाधा रहित है, नित्य है, आकुलता रहित है, स्वात्मसुख के प्रेमी साधु को निरन्तर स्वाद में आता है।

इस आत्मीक आनन्द को न जानकर अज्ञानीजन अपनी अविवेकपूर्ण बुद्धि के दोष से विषयों में आसक्त होकर सुख है ऐसा कहता है। ऐसा जीव स्त्रियों के जाल से दृढ़ बँधा हुआ इस इन्द्रिय सुख में मग्न होकर उसी तरह दुर्गति में जाकर क्लेश भोगता है। जैसे मृग शिकारी के जाल में पकड़ा जाकर दु:ख उठाता है। कोई लोग आशीविष सर्प को, कोई दन्दशूक सर्प को भयानक कहते हैं। मैं तो स्त्रियों को उनसे भी अधिक भयानक मानता हूँ। इन स्त्रियों के कटाक्ष मात्र से कामी पुरुष पीड़ित होकर काम की अग्नि से जला करते हैं, जैसे, मृग बाण के लगने से पीड़ित हो तड़फड़ाता है।

बड़े खेद की बात है कि मूर्ख प्राणी अपने ही स्वाधीन अतीन्द्रिय सुख को छोड़कर क्यों इस असार स्त्री के शरीर में मोहित होकर मदिरापायी के समान कष्ट पाते हैं। इस जगत में जो सबसे निन्दनीय वस्तु है, वह स्त्री का शरीर है। यह शरीर मल, मूत्र, रुधिर, माँस, हाड़ आदि के समूह से भरा है। दूसरी जो कोई वस्तु स्वभाव से सुन्दर व पवित्र होती है, वह इस शरीर के संसर्ग से क्षणमात्र में दुर्गन्धमय हो जाती है। हलाहल विषधारी सर्प के समान ये सर्व ही स्त्रियाँ हैं। विधाता कर्म ने प्राणियों को बाँधने के लिये जालरूप में इनको बनाया है।

पद्मश्री की वार्ता

स्वामी मन में ऐसा विचार ही रहे थे कि इतने में पद्मश्री दूसरी तीन स्त्रियों से कहने लगी—अरी सखी! इस निर्गुण पुरुष की खुशामद से क्या लाभ? नपुंसक में काम के बाण क्या असर पैदा कर सकते हैं। अन्धे के सामने नाचने से क्या, बहिरे के

सामने गाने से क्या, कायर के पास खड्ग होने से क्या, कृपण के पास लक्ष्मी से क्या? ये सब वृथा है। हे सखी! विदित होता है कि यह पूर्व तप के फल से प्राप्त भोगों को छोड़कर फिर तप करके उपभोगों को प्राप्त करना चाहते हैं। जैसे किसी मूर्ख मनुष्य के घर में भोजन तैयार है, उसको तो छोड़ दे, और अज्ञान व प्रमाद से घर-घर भीख माँगता फिरे। तप का फल सांसारिक सुख है, वह चाहे स्वर्ग में मिलो, चाहे मध्यलोक में मिलो। खेद की बात है कि मूर्ख इस प्रत्यक्ष बात को भूल जाता है। हम सब लक्ष्मी के समान स्त्रियाँ हैं। यह घर स्वर्ग के समान है, सुन्दर शरीर है, घर में सम्पदा है, सर्व दुर्लभ वस्तु हैं। इससे अधिक क्या चाहिए। जो कोई इस सर्व प्राप्त स्वाधीन सामग्री को छोड़कर आगे की आशा से तप करना चाहता है, कदाचित् आगे भोग न प्राप्त हुए तो वह मानव मूर्ख व विवेक रहित ही कहा जाएगा।

हे सखियो! इसी बात के दृष्टान्तरूप एक रमणीक कथा है वह मैं कहती हूँ, आप सब सावधान होकर सुनें—

पद्मश्री की कथा

पद्मश्री धनदत्त की कथा कहने लगी। एक धनदत्त नाम का किसान था। उसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था। उनका एक युवान पुत्र था जो गृहकार्य की सम्हाल करने में समर्थ था। कर्मों के उदय से किसान की स्त्री का देहान्त हो गया। जैसे—किसी को स्वप्न में लक्ष्मी मिले, आँख खोले तब जाती रहे।

फिर किसान ने अपने बड़े लड़के का विवाह कर दिया। परन्तु स्वयं कामातुर होकर साठ वर्ष का होने पर भी सोलह वर्ष की लड़की के साथ विवाह कर लिया। एक रात को वह अपनी

स्त्री के साथ बैठा था। वह स्त्री यकायक क्रोध करके रूठ गयी, मान करके बैठ गयी। वह किसान मीठे वाक्यों को कहकर उसको मनाने लगा, खुशामद के भरे वचन कहने लगा—हे प्रिये! मेरी तरफ देख। और कहा—तेरे अकस्मात् क्रोध करने का क्या कारण है? अपने पति को अपने अनुकूल देखकर वह कहने लगी—तू मुझे स्पर्श न कर, तू मेरी बात को स्वीकार नहीं करता है, अज्ञान से मेरे प्रेम को खण्डित कर दिया। नीति का श्लोक है—

पानीयं च रसः शीतं परान्नं सादरं रसः।
रसो गुणयुता भार्या मित्रश्चानंतरो रसः ॥36॥

भावार्थ—पानी ठण्डा तो रसयुक्त होता है, दूसरे के यहाँ भोजन आदर सहित मिले तो रसीला होता है, गुणवती स्त्री रसवती होती है, जिसके साथ कोई भेद न रखा जाए वही मित्र रसयुक्त होता है।

ऐसा सुनकर वह किसान कहने लगा—हे प्रिये! तू अपने मन की बात कह। जब बहुत विनती करी तब वह पाप का अभिप्राय मन में धारकर कहने लगी—तुम्हारा पुत्र बलवान है, इसको निश्चय से मार डालना चाहिए। इस भयंकर बात को सुनकर किसान कांपने लगा और बोला—अरे! यह काम बड़ा दुष्ट है। मैं कैसे कर सकता हूँ? तू मुझे बता, उसके मारने से क्या भला होगा? बिना किसी उद्देश्य के मन्दबुद्धि भी कोई काम नहीं करता है 'वह स्त्री बड़ी चतुराई से बात बनाकर कहने लगी—उसके मार डालने से बहुत भला होगा। सुनो—मेरे उदर से जो पुत्र पैदा होंगे उन सबको इसका दासपना करना पड़ेगा। इसमें

कोई संशय नहीं है। इसलिए इसका वध करना सर्वथा उचित है। हे स्वामी! इस काम को कर डालो।

इन वचनों से उसका मन कुछ विचलित हुआ। मन में कुछ दया भी थी। किसान ने कहा—मेरा पुत्र निरपराध है, उसका मैं कैसे वध कर सकता हूँ। यही एक इस घर का सब बोझा ढोता है, सर्व घर का निर्वाह करता है। यदि मैं उसको मार डालूँ तो राजा मुझको दण्ड देगा। सर्व बाँधव भी मुझे दोषी कहेंगे।

फिर वह दुष्ट चित्तधारिका भामिनी कहने लगी—इसका वध तो करना ही होगा, नहीं तो हम दोनों को सुख नहीं हो सकता। इसके मर जाने के बाद मेरे गर्भ से जो पुत्र पैदा होंगे वे बुढ़ापे में हमारी सेवा भले प्रकार करेंगे। मैं तुझे ऐसा उपाय भी बताती हूँ, जिससे उसका वध भी हो जावे, न राजा का भय हो, न बाँधव क्रोध करें।

खेत में जाकर वह धीरे-धीरे हल चलाता हो, तब तुम भी उसी के पीछे हल चलाना, उसमें कठोर सींगवाले, मारनेवाले बैल जोड़ना, मारकर जोर से चलाना तब बैल सींग उसके शरीर में भोंक देंगे, तुम भी पीछे से मारना, वह मर जाएगा। ऐसा करने से बैल का दोष होगा, न राजा तुमको दण्ड देगा, न बन्धुजन तुम्हें दोषी बनाएँगे। अपनी स्त्री की इस बात को काम से अन्धे किसान ने मान ली। उसको सन्तोषित किया कि मैं ऐसा ही करूँगा, तब उसके साथ काम क्रीड़ा करने लगा। उसका पुत्र पास के ही घर में सोता था।

उसने उन दोनों की सब बातें सुन ली थीं। वह बड़े सवेरे ही उठकर खेत में हल लेकर चला गया। पीछे से वह किसान भी

पुत्र वध के भाव से खेत में पहुँचा। उसके पुत्र ने धान्य पके हुए, खेत में हल चलाना प्रारम्भ किया, तब किसान ने देखा कि धान्य का खेत पका खड़ा है, यह उसका नाश कर रहा है तो अपने पुत्र से कहा—अरे! तू बड़ा मूर्ख है, तू इन पके धान्य का नाश क्यों कर रहा है? क्या तू बावला हो गया है? सुनकर पुत्र कहने लगा कि यह धान्य खेत पुराना पड़ गया है, उसको उखाड़कर नवीन धान्य बोऊँगा, जिससे आगे सुख होगा। इन वचनों को सुनकर किसान ने कहा—

हे पुत्र! तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, जो तू पके खेत को नाश करके नवीन खेती की इच्छा करता है। पिता के छल को जाननेवाला पुत्र कहने लगा—हे पिता! रात्रि को जो बात तुमने कही थी, उसे स्मरण करो। तुम अपनी स्त्री के साथ सुखभोग करने के लिये मुझ समर्थ पुत्र को मारकर भावी पुत्र की आशा की बुद्धि कैसे हो गयी है? पुत्र के वचन सुनकर पिता की बुद्धि ठिकाने आ गयी। उसने स्नेह बताया व अपनी भूल को स्वीकार किया।

हे सखियो! वह मूर्ख किसान तो समझ गया परन्तु हमारे स्वामी बड़े दुराग्रही हैं। इनको समझाना बड़ा कठिन है। हमारे स्वामी अज्ञानी के समान चेष्टा कर रहे हैं। वर्तमान स्वाधीन सम्पदाओं को छोड़कर आगे के लिये इच्छा करते हैं। आगे ऐसी सम्पत्ति मिले या न मिले, सन्देह की बात है।

यद्यपि जम्बूस्वामी विरक्त थे, तो भी बड़े बुद्धिमान थे। इस कथा को सुनकर सम्बोधन के लिये उसी तरह धर्म कथा कहने लगे जैसे कोई योगी कहता है। मैं भी आप सबको सम्यग्ज्ञान देनेवाली एक कथा कहता हूँ, सो सब ध्यान देकर सुनो।

जम्बूस्वामी की कथा

विंद्याचल के महावन में एक हाथी मर गया। वर्षा बहुत हुई इससे वह फिर नर्मदा नदी में बहने लगा। उस हाथी के माँस को एक काग खा रहा था, सो उसके मस्तक पर बैठा हुआ ही माँस का लोभी नदी में आ गया। काक सहित हाथी का कलेवर बहते-बहते समुद्र में पहुँच गया। तब समुद्र के मच्छादि जलचर जन्तुओं ने उस हाथी के कलेवर को शीघ्र ही भक्षण कर लिया। तब काक उड़ा। महासमुद्र में इधर-उधर उड़ते-उड़ते चारों तरफ देखता है तो न कहीं ग्राम है न वृक्ष है, न पर्वत है, कोई स्थान विश्राम के लिये न दिख पड़ा। जब तक शक्ति रही तब तक उड़ता रहा। फिर उस समुद्र में गिर पड़ा। मुख से कांओं-कांओं करता हुआ, वह बेचारा मर गया। जैसे—इस माँस-लोलुपी काक को अकस्मात विपत्ति आ पड़ी, वैसे मैं, हे स्त्रियों! वही विपत्ति में पड़ना नहीं चाहता हूँ। यदि मैं तुमसे संसर्ग करके भोग भोगूँ और मोह से कर्म बाँधूं—जब कर्मों का उदय होगा और मैं भवसागर में डुबूँगा तब मुझे कौन उद्धार करेगा?

इस दृष्टान्त से पद्मश्री की कथा का खंडन हो गया।

कनकश्री की कथा

तब कनकश्री कौतूहल से पूर्ण कथा कहने लगी—रमणीक कैलाश पर एक बन्दर रहता था। एक दिन वह पर्वत की चोटी पर चढ़ गया। यकायक वह गिर गया। शरीर के खण्ड-खण्ड हो गये। शान्त भाव से निर्जरा से मरकर वह एक विद्याधर का पुत्र हुआ। एक दफे बड़ी आयु पाने पर विद्याधर ने मुनि महाराज से नमन करके अपना पूर्व भव पूछा। मुनि महाराज ने अवधिज्ञान

नेत्र से देखकर कह दिया कि पूर्व जन्म में तुम बन्दर थे। कैलाश से गिरकर पुण्य के फल से विद्याधर हुए हो। इस बात को सुनकर विद्याधर ने कुमति ज्ञान से यह मन में निश्चय कर लिया कि जिस स्थान से मरकर मैं कपि से विद्याधर हुआ हूँ, उसी स्थान से गिरकर यदि मैं फिर मरूँगा तो अवश्य देव हो जाऊँगा। इसलिए मुझे अवश्य जाकर कैलाश के शिखर से गिरकर मरना चाहिए। एक दिन विद्याधर ने अपनी स्त्री से अपने मन की बात कही कि हे प्रिये! कैलाश के शिखर से गिरकर मरने से स्वर्ग मोक्ष के फल मिलते हैं, इससे मैं कैलाश से पडूंगा। उसकी स्त्री सुनकर दीनमन हो दु:खित होकर रुदन करने लगी व कहने लगी—हे स्वामी! आप बड़े बुद्धिमान हैं, आप क्यों मरण चाहते हैं, आप तो विद्याधर हैं, आपको किस बात की कमी है? उस मूर्ख ने स्त्री की बात पर ध्यान नहीं दिया—जाकर कैलाश के शिखर से पड़ा तो आर्तध्यान से मरकर फिर वही लाल मुख का बन्दर पैदा हो गया। हे सखियो! जैसे मूर्ख विद्याधर ने स्वाधीन सम्पदा को छोड़कर मरण करके पशु पर्याय पायी, वैसे हमारे स्वामी का व्यवहार है। महारमणीक सर्व सम्पदाओं को छोड़कर आगे की वाँछा से तप करने जाते हैं, फिर ये सम्पदाएँ मिलें या न मिलें, क्या भरोसा है?

जम्बूस्वामी की कथा

जम्बूस्वामी कनकश्री की कथा को सुनकर उसको उत्तर देने के लिये एक कथा कहने लगे—विन्द्याचल पर्व पर एक बलवान कोई बन्दर था। वह बड़ा कामी था। वह वन के बन्दरों को मार डालता था। ईर्ष्यावान भी बहुत था। अपनी बन्दरी से जो बच्चे

होते थे, उनको भी मार डालता था। अकेला ही काम क्रीड़ा करते हुए तृप्त नहीं होता था। एक दफे उसी को एक बन्दर पुत्र हुआ, वह उसके जानने में न आया। किसी तरह बच गया। जब वह पुत्र युवान हुआ, तब कामातुर होकर अपनी माता को स्त्री मानकर रमण करने को उद्यत हुआ। तब उसके पिता बन्दर ने देख लिया और उसके मारने को क्रोध करके दौड़ा। उस युवान बन्दर ने पिता को दाँतों से व नाखूनों से काटा। दोनों पिता-पुत्र बहुत देर तक परस्पर नख व दाँतों से काट-काटकर युद्ध करने लगे। घबड़ाकर बूढ़ा बन्दर भाग निकला, तब युवान बन्दर ने उसका पीछा किया। जब वह बहुत दूर निकल गया तब युवान बन्दर लौट आया। वृद्ध बन्दर को बहुत प्यास लगी। वह पानी पीने को कीच सहित पानी में घुसा। मैले पानी को पी लिया। परन्तु कीचड़ में ऐसा फँस गया कि निकल न सका। वह मूर्ख विषय-वासना से आतुर होता हुआ मर गया। हे प्रिये! मैं इस बन्दर के समान इस संसार में विषयों के भीतर यदि फँस जाऊँ तो मेरा कौन उद्धार करेगा?

जम्बूस्वामी के इस उत्तर के बल से कनकश्री मरुझा गयी। तब कथा कहने में चतुर तीसरी विनयश्री बोली—

विनयश्री की कथा

एक कोई दरिद्री पुरुष था, जिसका नाम संख था। वह रोज सवेरे वन में लकड़ी काटने जाया करता था। ईंधन लाकर विक्रय करके बड़े कष्ट से असाता के उदय से पेट पालता था। एक दफे लकड़ी का दाम बाजार में अधिक मिला। तब भोजन में खर्च करने के पीछे एक रुपया बच गया। तब अपनी स्त्री के साथ

सम्मति करके उसने रुपये को भूमि में गाढ़ दिया कि कभी आपत्ति पड़ेगी तो यह काम आयेगा।

कुछ दिन पीछे एक प्रवासी यात्री उस वन में आया। वहाँ उसने अपना रत्नों का पिटारा गाड़ दिया और तीर्थयात्रादि के लिये चला गया। उस दरिद्री शंख ने उसे गाड़ते देख लिया था। जब वह प्रवासी चला गया, तब संख ने उस रत्नभांड को लोभ से दूसरी जगह गाड़ दिया, और मन में विचारने लगा कि इसमें से जब चाहूँगा एक-एक रत्न निकालता रहूँगा। घर में जाकर अपनी स्त्री से सर्व हाल कहा कि पुण्य के उदय से एक रत्नों का पिटारा मुझे मिल गया, मैंने उसे यत्नपूर्वक गाड़ दिया है। हे प्रिय! यह बात सच है, मैं झूठ नहीं कहता हूँ।

इस बात को सुनकर स्त्री को आश्चर्य हुआ, तो भी हर्ष से फूल गयी। हे भद्र! बहुत अच्छा हुआ, तुम चिरकाल तक जीओ। मेरी सलाह और मानो। जो एक रुपया तुमने एकत्र किया है, उसको भी उस रत्नभांड में कुशलता से भर दो। हम तुम दोनों अपना नित्य कर्म बराबर करते रहें। मोह के कारण स्त्री के वचनों को दरिद्री ने मान लिया कि तूने ठीक कहा—दरिद्री ने वैसा ही किया। दोनों ही जने वन से काष्ठ ले जाते थे और विक्रय करके पेट भरते थे।

कुछ दिनों के बाद रत्नभांड का स्वामी पीछे उसी वन में आया। अपने रत्नभांड को जहाँ रखा था, वहाँ न पाकर इधर-उधर भूमि खोदकर ढूँढ़ने लगा, कुछ देर के परिश्रम के बाद पुण्य के योग से उसको वह रत्न पिटारा मिल गया। उसको लेकर वह आनन्द से अपने घर चल गया। पुण्य के बल से

चंचला लक्ष्मी गयी हुई भी सुख से मिल जाती है। उस दरिद्री ने एक घड़े के भीतर रत्न पिटारी रखकर रुपया रख दिया था।

एक दिन वह वहाँ आकर खोदता है तो घड़े को खाली पाता है। रत्न पिटारी भी गयी व एक रुपया भी गया। वह मूर्ख हाय-हाय करके सिर को पीट-पीटकर रोने लगा। हा! रत्न पिटारे के साथ मेरा पहला संचय किया हुआ रुपया भी चला गया।

हा! पाप के उदय से मैं ठग गया, मैंने प्राप्त धन को न भोग में लगाया न दान में लगाया। जिसके आधीन लक्ष्मी हो फिर भी वह उसका भोग न करे तो वह पीछे उसी तरह पछतायेगा, जैसे संख दरिद्री को पछताना पड़ा।

जम्बूस्वामी की कथा

विनयश्री की कथा सुनकर जम्बूस्वामी ने फिर एक कथा के बहाने उत्तर दिया—लब्धदत्त नाम का एक बनिया था। व्यापार के लिये बाहर गया था, सो मार्ग में एक भयानक वन में आ पड़ा। पाप के उदय से उसके पीछे एक भयानक हाथी क्रोधित हो उसको मारने को दौड़ा। उससे भयभीत होकर वह बनिया भागा और यकायक एक कूप के ऊपर वटवृक्ष की शाखा पकड़कर लटक गया। उस शाखा की जड़ को दो चूहे—एक सफेद, एक काले काट रहे थे। वणिक देखकर विचारने लगा कि क्या किया जाए? वह शाखा कटी कि कूप के भीतर अवश्य गिर जाऊँगा, शरीर के शत खण्ड हो जाएँगे, ऐसा विचारते हुए नीचे देखा तो कूप में एक बड़ा अजगर बैठा हुआ है, देखकर काँपने लगा। फिर देखा तो चारों कोनों से निकले हुए भयानक साँप कूप में बैठे हैं। उस समय उस वणिक को जो संकट हुआ, वह कहा नहीं जा सकता।

हाथी क्रोध में होकर उस वटवृक्ष को अपने कन्धे से उखाड़ने का उद्यम करने लगा व ध्वनि करने लगा। जहाँ वह वणिक लटक रहा था, उसके ऊपर एक मधु मक्खियों का छत्ता था। यकायक मधु की बूँद उस वणिक के मुख में आ पड़ी। उस बूँद के स्वाद से वह बड़ा राजी हो गया।

इतने ही में एक विद्याधर आकाशमार्ग से जा रहे थे, उसने वणिक को कूप के ऊपर लटकते देखकर वह विमान से उतरा और बोला—हे मूढ़! मैं विद्याधर हूँ, मैं तुझे निकाल सकता हूँ। मेरी भुजा को पकड़, तू निकल जा, संकट से बच जा। सुनकर वह मधु के रस के स्वाद का लोलुपी कहने लगा—थोड़ी देर ठहर जाओ, जब तक एक मधु की बूँद मेरे मुख में और न आ जावे।

दयावान विद्याधर ने फिर भी कहा कि रे मूढ़! तेरा प्राण निकट है, बिन्दु मात्र के लोभ से कूप में प्राण न गमा। तू हलाहल विष खाकर जीना चाहता है सो ठीक नहीं है। मेरी भुजा पकड़, देर न कर। इस तरह बहुत बार समझाया परन्तु वह रसना इन्द्रिय के लोभवश नहीं समझा। विद्याधर ने उसे मूर्ख समझा और वह अपने मार्ग से चला गया। थोड़ी देर में मूषकों के द्वारा शाखा कटने से वह कूप में गिर पड़ा और अजगर ने उसे भक्षण कर लिया। जिस तरह लुब्धदत्त वणिक मधु बिन्दु के लोभ से काल ग्रसित हुआ वैसे मैं इस तुच्छ विषयसुख के लिये महा भयानक काल के मुख में प्रवेश करना नहीं चाहता हूँ।

विनयश्री स्वामी के वचन सुनकर मूढ़तारहित हो गयी।

अब चौथी स्त्री रूपश्री कथा कहने लगी—

रूपश्री की कथा

एक दफे मनोहर वर्षाकाल आ गया। मेघ छा गए। पानी की वर्षा से तलैया तालाब भर गये, बिजली चमकने लगी। मार्ग में कीचड़ से आना-जाना कठिन हो गया। दिन में अन्धकार छा गया। ऐसे समय में एक कृकलास (किरला) भूखी होकर अपने बिल से निकली। वह घूमती थी। उसने एक काले भयानक दण्डशूक सर्प को देखा। ऐसे भयानक कालस्वरूप सर्प को देखकर वह भय से चिन्तातुर हो भागी और नदी में एक नकुल के बिल में चली गयी। वह सर्प भी उसी के पीछे-पीछे उसी बिल में घुस गया। वहाँ सर्प ने उसको तो छोड़ दिया और बिल के भीतर बहुत उसका कुटुम्ब मिलेगा। उसको पकड़ूँगा इस आशा में आगे चला गया। नकुलों ने सर्प को देखकर क्षुधा से आतुर हो उसे मार डाला और खा लिया।

जैसे उस सर्प की दशा हुई वैसे हमारे स्वामी विवेक रहित हैं, जो सामने पड़ी लक्ष्मी को छोड़कर आगे की आशा करके पथभ्रष्ट हो रहे हैं। रूपश्री की कथा सुनकर जम्बूकुमार उसे समझाने के लिये एक सुन्दर कथा कहने लगे—

जम्बूकुमार की कथा

इस पृथ्वी पर एक शृगाल था। रात को वह नगर के भीतर गया, वहाँ एक बूढ़े बैल को मरा हुआ देखकर प्रसन्न हो गया कि अब मेरे मन का मनोरथ सिद्ध होगा। वह शृगाल उस बैल के हाड़पिंजर के भीतर घुस गया। माँस को खाते-खाते तृप्त नहीं हुआ। इतने में रात चली गयी। सबेरा हो गया, तब नगर के लोगों ने उस शृगाल को देख लिया, वह उस अस्थि के पंजर से

निकलकर भाग न सका, चित्त में व्याकुल हो गया कि आज मेरा मरण अवश्य होगा।

इतने में किसी नागरिक ने शृगाल के दोनों कान व उसकी पूँछ किसी औषधि बनाने के लिये काट ली। फिर वह विचारने लगा कि इस तरह भी जीता बचे तो ठीक है, अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है। इतने में किसी ने पत्थर लेकर उसके दाँत तोड़कर निकाल लिये कि इनसे घर जाकर वशीकरण मन्त्र सिद्ध करूँगा। तब भी शृगाल विचारने लगा कि इसी तरह जान बचे तो वन में भाग जाऊँ।

इतने में कुत्तों ने आकर क्षणमात्र में मार डाला। रसना इन्द्रिय के वश वह शृगाल जैसे मारा गया व कुत्तों से खाया गया। वैसे मैं विषयों के मोह में अन्धा होकर नष्ट होना नहीं चाहता हूँ। कौन बुद्धिमान जानबूझकर कुमार्ग में पड़ेगा? यदि मैं इन्द्रियों के विषयों के वश में निर्बल होकर फँस जाऊँ तो फिर मेरा कौन उद्धार करेगा? हे प्रिये! तुम्हारे वचन परीक्षा में उचित नहीं बैठते हैं।

इस तरह उन चारों महिलाओं के नाना प्रकार से वार्तालापों से महात्मा कुमार का मन किंचित् भी शिथिल नहीं हुआ।

विद्युच्चर का आगमन

इधर कुमार के साथ स्त्रियाँ वार्तालाप कर रही थीं, उधर उस रात्रि को विद्युच्चर नाम का एक चोर कामलता वेश्या के घर से चोरी करने को निकला। कोतवाल से अपनी रक्षा करता हुआ वह चोर उस रात को अरहदास सेठ के घर चोरी करने को आया, जहाँ कुमार का शयनालय था, वहाँ पर आ गया। कुमार

का अपनी स्त्रियों से जो वार्तालाप हो रहा था, उसको सुनकर विचारने लगा कि पहले इस कौतूहल को देखूँ कि रत्नों को चुराऊँ? सुनने की दृढ़ आकांक्षा हो गयी। यही निश्चय कर लिया कि पहले सब सुनना चाहिए, फिर धन को चुराऊँगा। वह ध्यान से उनकी वार्ता को सुनने लगा।

वर व कन्याओं की कथाओं को सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि कुमार के धैर्य की महिमा कौन कह सकता है? इन वधुओं ने किंचित् भी कुमार के मन को नहीं डिगाया। उधर जम्बूकुमार की माता घबड़ाई हुई मकान में इधर-उधर फिर रही थी। बारबार कुमार के शयनालय के द्वार पर जाकर देखती थी कि स्त्रियों के मोह में कुमार आया कि नहीं।

यकायक भीत के पास खड़े हुए चोर को देखकर भयभीत हो बोली—यह कौन है? तब विद्युच्चर ने कहा कि माता! घबड़ा नहीं, मैं प्रसिद्ध विद्युच्चर नाम का चोर हूँ। मैं तेरे नगर में नित्य चोरी किया करता हूँ। अब तक मैंने बहुतों का धन चुराया है। तेरे घर से भी सुवर्ण रत्न चुराये हैं। और क्या कहूँ? इसलिए आज भी आया हूँ।

कुमार की माता कहने लगी—हे वत्स! तुझे जो चाहिए सो मेरे घर से ले जा। तब विद्युच्चर ने जिनमती से कहा—हे माता! मुझे आज धन लेने की चिन्ता नहीं है, किन्तु मैं बहुत देर से यह अपूर्व कौतुक देख रहा हूँ कि युवती स्त्रियों के कटाक्षों से इस युवान का मन किंचित् भी विचलित नहीं हुआ है। हे माता! इसका कारण क्या है सो कह। अब तू मेरी धर्म की बहन है, मैं तेरा भाई हूँ।

तब जिनमती धैर्य धारणकर कहने लगी एक ही मेरा यह कुलदीपक पुत्र है। मैंने मोह से आज इसका विवाह कर दिया है। परन्तु यह विरक्त है व तप लेना चाहता है। सूर्य के उदय होते ही वह नियम से तप ग्रहण करेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। उसके वियोगरूपी कुठार से मेरे मन के सैकड़ों खण्ड हो रहे हैं। इसीलिए मैं घबड़ाई हुई हूँ और बारबार इस घर के द्वार पर आकर देखती हूँ कि कदाचित् पुत्र का संगम अपनी वधुओं के साथ हो जावे।

जिनमती के वचन सुनकर विद्युच्चर के मन में दया पैदा हो गयी, और कहने लगा—हे माता मैंने सब हाल जान लिया। तू भय न कर, मुझसे इस कार्य में जो हो सकेगा, मैं करूँगा। तू मुझे जिस तरह बने कुमार के पास शीघ्र पहुँचा दे। मैं मोहन, स्तम्भन, वशीकरण मन्त्र-तन्त्र सब जानता हूँ। उन सबसे मैं प्रयत्न करूँगा।

आज यदि मैं तेरे पुत्र का संगम वधुओं से न करा सकूँगा तो मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो उसकी गति होगी वह मेरी गति होगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके वह विद्युच्चर बाहर खड़ा रहा। माता ने धीरे-धीरे द्वार खटखटाया। हाथ की अंगुली से द्वार पर थपकी दी, परन्तु लज्जावश मुख से कुछ नहीं बोली। कुमार ने शीघ्र किवाड़ खोल दिये। कुमार ने नमन किया, माता ने आशीर्वाद दिया।

तब जम्बूकुमार ने विनय से पूछा—हे माता! यहाँ इस समय आने का क्या कारण है? तब जिनमती कहने लगी—जब तुम गर्भ में थे तब मेरा भाई-तुम्हारा मामा वाणिज्य के लिये परदेश गया था। आज वह तेरे विवाह का उत्सव सुनकर यहाँ आया है—तुम्हारे दर्शन की बड़ी इच्छा है, वह बहुत दूर से पधारा है।

जिनमती के वचन सुनकर कुमार ने कहा कि मेरे मामा को शीघ्र यहाँ बुलाओ। पुत्र की आज्ञा होने पर माता शीघ्र विद्युच्चर को जम्बूकुमार के पास ले गयी। जम्बूकुमार मामा को देखकर पलंग से उठे और आदर सहित स्नेह पूर्ण हो गले मिले। स्वामी ने पूछा—इतने दिन कहाँ-कहाँ गये थे, मार्ग में सब कुशल रही ना?

सुनकर विद्युच्चर ने भानजे की बुद्धि से कहा कि हे सौम्य! सुन, मैंने इतने दिन कहाँ-कहाँ व्यापार किया?

दक्षिण दिशा में समुद्र तक गया हूँ, चन्दन के वृक्षों से पूर्ण ऊँचे मलयागिर पर, सिंहलद्वीप में (वर्तमान सीलोन), केरलदेश में, मंदिरों से पूर्ण व जनों से भरे हुए द्राविड़देश (तामिल में), चीन में, कर्नाटक में, काम्बोज में, अति मनोहर बांकीपुर में, कोंतलदेश में, होकर उन्नत सह्य पर्वत के वहाँ आया। फिर महाराष्ट्र देश में गया। वहाँ से अनेक वनों से शोभित वैदर्भदेश में बरार में गया। फिर नर्मदा नदी के तट पर विंध्य पर्वत के वहाँ पहुँचा।

विंद्याचल के वनों को लांघकर आगे आहीर देश में, चउलदेश में, भृगुकच्छ (भरोंच) के तट पर आया वहाँ धवलसेठ का पुत्र श्रीपाल राजा राज्य करता है। कोंकणनगर में होरक किष्किंध्य नगर में आया। इत्यादि बहुत से नगर देखे, फिर पश्चिम में जाकर सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) देखा। श्री गिरनार पर्वत पर आया। श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के पंचकल्याणकों के स्थान व वह स्थान देखा जहाँ श्री नेमिनाथ ने राजमती को छोड़कर तप किया था।

उसी गिरनार पर्वत से यदुवंश-शिरोमणि, नेमिनाथ मोक्ष प्राप्त हुए हैं। भिल्लराज विशाल देश में गया। अर्बुदाचल (आबू)

पर प्राप्त हुआ। महा रमणीक सम्पत्तिपूर्ण लाट देश को देखा। चित्रकूट पर्वत होकर मालवा देश में गया। इस अवन्तीदेश के जिन मन्दिरों की महिमा का क्या वर्णन करूँ?

फिर उत्तर दिशा में गया। शाकम्भरी पुरी गया, जो जिन मन्दिरों से पूर्ण है व मुनियों से शोभित है। काश्मीर, करहार, सिन्धुदेश, आदि में होकर मैं व्यापार करता हुआ पूर्वदेश में आया। कनौज, गौड़देश अंग, बंग, कलिंग, जालन्धर, बनारस व कामरूप (आसाम) को देखा। जो-जो मैंने देखा मैं कहाँ तक कहूँ।

इस तरह परम विवेकी जम्बूकुमार स्वामी जगतपूज्य जयवन्त हो, जो विरक्तचित्त हो पर पदार्थ के ग्रहण से उदास हो स्त्रियों के मध्य में बैठे चोर की बात सुन रहे हैं।

दसवाँ अध्याय

जम्बूस्वामी-विद्युच्चर वार्तालाप

मोहरूपी महायोद्धा को जीतनेवाले मल्लिनाथ की तथा सुव्रतों को बतानेवाले मुनिसुव्रत तीर्थंकर की स्तुति करता हूँ।

विद्युच्चर का समझाना व कथा कहना

अब विद्युच्चर मामा के रूप में श्री जम्बूकुमारस्वामी को कोमल वचनों से समझाता हुआ कहने लगा—हे कुमार! तुम बड़े भाग्यवान हो, ऐश्वर्यवान हो, कामदेव के समान तुम्हारा रूप है। वज्रधारी इन्द्र के समान बलवान हो, चन्द्रमा की किरण समान यशस्वी व शान्त हो, मेरुपर्वत के समान धीरवीर हो, समुद्र के समान गम्भीर हो, सूर्य के समान तेजस्वी हो, कमलपत्र के समान नम्र स्वभावधारी हो, शरणागत की रक्षा करने को बलवान हो।

जो जगत में दुर्लभ भोग सामग्री है, सो पूर्व बाँधे हुए पुण्य के उदय से तुमने प्राप्त की है। किन्हीं को दुर्लभ वस्तु मिल आती है, परन्तु वे भोग नहीं सकते हैं, जैसे भोजन सामने होने पर भी रोगी खा नहीं सकता। किसी को भोजन की शक्ति तो है, परन्तु भोगादि सामग्री नहीं मिलती है। जिसके पास मनोज्ञ भोग सामग्री भी हो व भोगने की शक्ति भी हो, फिर भी वह भोग न करे तो उसको यही कहा जाएगा कि वह द्रव से ठगा गया है।

जैसे किसी के पास स्त्रियाँ हों, परन्तु उसके कामभोग का उत्साह न हो। या किसी को कामभोग का उत्साह हो, परन्तु

स्त्रियाँ न हों। किसी को दान करने का उत्साह तो है परन्तु घर में द्रव्य नहीं है। किसी के घर में द्रव्य है परन्तु दान करने का उत्साह नहीं है। दोनों बातों को पुण्य के उदय से धारकर नहीं भोगता है, उसे मूर्ख ही कहना चाहिए।

मूर्ख मानव खरगोश के सींग को व वन्ध्या के पुत्र को मारना चाहता है, सो उसकी मूर्खता है। जिसके लिये चतुर पुरुष तप करने का क्लेश करते हैं, वह सर्वांग पूर्ण सुख तेरे सामने उपस्थित है, उसको छोड़कर और अधिक की इच्छा से जो तुम तप करना चाहते हो सो यह तुम्हारा विचार उचित नहीं है। दृष्टान्तरूप, मैं एक कथा कहता हूँ। सो है भागिनेय! ध्यान से सुन—

एक युवान ऊँट था, वह वन में इच्छानुसार बहुत से वृक्षों को खाता फिरता था। एक दिन वह एक वृक्ष के पास आया जो कूप के पास था। उसके पत्तों को गले को ऊँचा करके खाने लगा। उसके स्वादिष्ट पत्तों को खाते-खाते उसके मुख में एक मधु की बूँद पड़ गयी। मधु के रस के स्वाद का लोभी हो वह विचारने लगा कि इस वृक्ष की सबसे ऊँची शाखा को पकड़ने में बहुत अधिक मधु का लाभ होगा। मधु का प्यासा होकर ऊपर की शाखा पर बारबार गले को उठाने लगा तो पग उठ गये, यकायक वह बेचारा कूप में गिर पड़ा। उसके सब अंग टूट गये। जैसे महा लोभ के कारण इस ऊँट की दशा हुई वैसे ही तुम्हारी दशा होगी, जो तुम अज्ञान से मोहित होकर प्राप्त सम्पदा को छोड़कर आगे के भोगों के लाभ के लिये तप करना चाहते हो।

जम्बूस्वामी की कथा

तब जम्बूस्वामी कहने लगे—हे मामा! आपके कथन के

उत्तर में मेरी कथा भी सुनो—

एक वणिक पुत्र घर के कार्य में लीन था। एक दिन व्यापार के लिये स्वयं परदेश गया। मार्ग भूलकर वह एक भयानक वन में फँस गया। प्यास भी बहुत लगी। पानी न पाकर पश्चाताप करने लगा कि मैं घर से वृथा ही आकर इस वन के भीतर फँस गया। यदि जल न मिला तो प्यास से मेरा मरण अवश्य हो जाएगा। ऐसा विचार करते हुए बैठा था कि चोरों ने आकर उसका माल लूट लिया। धन की हानि के शोक से व प्यास से पीड़ित होकर वह एक पग भी चल न सका। एक वृक्ष के नीचे सो गया, वहाँ सोते हुए उसने एक स्वप्न देखा कि वन में एक सरोवर है, उसका पानी मैं पी रहा हूँ, जिह्वा से पानी का स्वाद ले रहा हूँ। इतने में जाग उठा तो देखता है कि न कहीं सरोवर है, न कहीं जल है। हे मामा! स्वप्न के समान सब सम्पदाओं को जानो। यकायक मरण आता है, सब छूट जाता है। ऐसे स्वप्न के समान क्षणभंगुर भोगों में महान पुरुषों का स्नेह कैसे हो सकता है?

विद्युच्चर की कथा

कुमार की कथा को सुनकर वास्तव में वह उसी तरह निरुत्तर हो गया जैसे एकान्त मतवादी स्याद्वादी के सामने निरुत्तर हो जाते हैं। फिर भी विद्युच्चर दूसरी कथा कहकर उद्यम करने लगा—

एक कोई वृद्ध बनिया था, वह अपनी स्त्री से प्रेम करता था परन्तु स्त्री नवयौवना व्यभिचारिणी व दुष्टा थी। एक दिन वह घर से सुवर्णादि लेकर निकल गयी। वह काम-लम्पटी इच्छानुसार भोगों में रत होना चाहती थी। जाते हुए किसी धूर्त ठग ने देख लिया, देखकर उसको मीठे वचनों से रिझाने लगा—

हे सुन्दरी! तुझे देखकर मेरे मन में स्नेह पैदा हो गया है कि न जाने क्या कारण है। जन्मान्तर का तेरे साथ स्नेह है ऐसा विदित होता है। वह कहने लगी—यदि तेरे मन में मेरी तरफ प्रेम है तो आज से तुम ही मेरे भर्तार हो, दूसरा नहीं है। इस तरह परस्पर स्नेहवान हो वे पति-पत्नी के समान रहने लगे, इच्छानुसार कामक्रीड़ा करने लगे। इस तरह दोनों का बहुत सा काल बीत गया। एक दिन वह दूसरे कामी पुरुष के साथ स्नेहवर्ती हो गयी, वह निर्लज्ज घृणारहित माया व मिथ्या भाव से भरी हुई कामभाव से जलती हुई दोनों ही के साथ रतिकर्म करने लगी। वास्तव में स्त्रियों के मन में कुछ और होता है, वचन कुछ कहती हैं। पण्डितों को कभी भी स्त्रियों का विश्वास न करना चाहिए।

एक दिन दुष्टबुद्धिधारी प्रथम जार पुरुष दूसरे पुरुष का आना जानकर विचारने लगा कि किसी तरह स्त्री से उसका पिण्ड छुड़ाना चाहिए।

उसने जाकर कोतवाल से कहा—रात्रि को कोई आकर मेरी स्त्री के साथ रमण करता है, उसे रात्रि को आकर पकड़ ले तो तुझे सुवर्ण का लाभ होगा। ऐसा कहकर वह घर आ गया। रात्रि होने पर पहला पति जागता हुआ ही सो गया कि मैं इस स्त्री के खोटे चरित्र को देखूँ। इतने में रात्रि को दूसरा पति आ गया। तब वह व्यभिचारिणी पहले पति के पास से उठकर दूसरे के पास चली गयी। जब वह दूसरा जार कामातुर हो स्त्री-भोग करने को ही था कि कोतवाल उसको पकडने को आ गया। कोलाहल होने पर वह दुष्टा पहले जार के साथ आकर सो गयी।

रुद्र स्वभावधारी सिपाहियों ने कहा—यहाँ वह जार चोर

कहाँ है ? इतने में दूसरा जार पति बोल उठा कि मैं तो निद्रा में था, मैं नहीं जानता हूँ। इधर-उधर देखते हुए व स्त्री के पास पूर्व पति को देखकर पूर्व पति को पकड़ लिया कि यही वह जार है, तथा यही वह स्त्री है, जिसने पकड़ाना चाहा था वही पकड़ा गया। सिपाहियों ने मारते-मारते बड़ी निर्दयता से उसे कोतवाली में पहुँचाया।

इस बात को देखकर वह स्त्री डरी कि कदाचित् मुझे भी सिपाही पकड़ लें। इसलिए उसने भागना निश्चय किया, तब उसने दूसरे जार को समझा दिया कि हम दोनों मिलकर यहाँ से निकल चलें। उस स्त्री ने घर के वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य वस्तु ले ली और जार के साथ घर से निकली।

मार्ग में गहरी नदी मिली। तब यह दूसरा जार मायाचार से ठगने के लिये बोला—हे प्रिय! वस्त्राभूषणादि सब मुझे दे दे, मैं पहले पार जाकर एक स्थान में इनको रखकर पीछे आकर तुझे अपने कन्धे पर चढ़ाकर भले प्रकार पार उतार दूँगा। स्वयं वह धूर्त थी ही, उसने उस धूर्त का विश्वास कर लिया। उसने पति जानकर अपने सब गहने कपड़े उतारकर दे दिये। आप नग्न होकर इस तट पर बैठी रही। वह दुष्ट ठग नदी पार करके लौटकर नहीं आया।

यह अकेली यहाँ बैठी रही, तब स्त्री ने कहा—हे धूर्त! तू लौटकर आ। मुझे छोड़कर चला गया। उस ठग ने कहा—कि तू बड़ी पापिनी है। वहीं बैठी रह। इतने में शृगाल आ गया। जिसके मुख में माँस पिण्ड था, पूँछ ऊँची थी। उस शृगाल ने पानी में उछलते हुए एक मछली को देखा। तब वह अपने मुख के माँस

को पटककर महालोभ से मछली को पकड़ने को दौड़ा।

इतने में वह खूब गहरे पानी में चला गया, तब वह लोभी सियार उसी माँस को लेकर दूसरे वन में भाग गया, वह स्त्री ऐसा देखकर हँसी कि सियार को मछली नहीं मिली। उसने बिना विचारे काम किया। स्वाधीन माँस को छोड़कर पराधीन माँस लेने की इच्छा की। वह धूर्त चोर भी दूसरे पार से कहने लगा—हे मूर्खे! तूने क्या किया, तू अपने को देख। यह पशु तो अज्ञानी है, हित-अहित को नहीं जानता है, तू कैसी अज्ञानी है कि अपने पति को मारकर दूसरे के साथ रति करने लगी?

इतना कहकर वह धूर्त ठग अपने घर चला गया तब वह स्त्री लज्जा के मारे नीचा मुख करके बैठी रही।

हे भागिनेय! तुम अपने पास की लक्ष्मी को छोड़कर आगे की इच्छा को करके मत जाओ नहीं तो हास्य के पात्र होगे।

जम्बूकुमार की कथा

तब फिर जम्बूकुमार अपने दाँतों की कान्ति को चमकाते हुए कहने लगे—

एक व्यापारी जहाज का काम करता था। एक दिन जहाज पर चढ़कर वह दूसरे द्वीप में गया। वहाँ सर्व माल बेचकर एक रत्न खरीद लिया। तब वह बनिया अपने घर को लौटा। मार्ग में अपने हाथ में रत्न रखकर व बारबार देखकर यह विचारने लगा कि समुद्रतट पहुँचकर मैं इस महान रत्न को बेच डालूँगा और हाथी घोड़े आदि नाना प्रकार की वस्तु खरीदूँगा, फिर राजा के समान होकर अपने नगर को जाऊँगा। लक्ष्मी से पूर्ण हो मन्त्री व

नौकर चाकर रखूँगा। मैं घर में रहकर स्वस्त्री के साथ सुख से जीवन बिताऊँगा। मुस्कराते हुए स्त्रियों को देखूँगा। पुत्र-पौत्रादि होंगे उनको देखकर प्रसन्न होऊँगा। ऐसा मन में विचारता जा रहा था कि पाप के उदय से व प्रमाद से वह रत्न हाथ से समुद्र में गिर पड़ा, तब उसके मन के सब मनोरथ वृथा रह गये। रत्न न दिखने पर हाहाकार करके रोने लगा।

हे मामा! मैं इस तरह नहीं हूँ कि धर्म के फल को छोड़कर वर्तमान विषयभोगों में फँस कर दु:ख भोगूँ।

स्वामी के इस उत्तर को सुनकर वह चोर निरुत्तर हो गया तथापि वह एक और कथा कहने लगा, जैसे मृदंग को मारने से वह ध्वनि निकालता ही है।

विद्युच्चर की कथा

एक धनुषधारी शिकारी भील विंध्याचल पर्वत पर रहता था। उसका नाम दृढ़प्रहरी था। उसने एक दिन एक वन के हाथी को जो सरोवर में प्यासा होकर पानी पीने आया था, जान से मार डाला। पाप के उदय से उसी क्षण एक सर्प ने भील को डंस लिया, भील भी मर गया। वह साँप भी धनुष के लगने से घायल होकर मर गया। वहाँ हाथी, भील और साँप तीनों मृतक पड़े थे, इतने में एक भूख सियार वहाँ आ गया। वहाँ पर हाथी, भील, साँप व धनुष को पड़ा हुआ देखकर लोभ के कारण बहुत हर्षित हुआ। वह सियार मन में विचारने लगा कि इस मरे हुए हाथी को छह मास तक निश्चिन्त हो खाऊँगा। उसके पीछे एक मास तक इस मनुष्य का शरीर भक्षण करूँगा। उसके बाद पीछे साँप को एक दिन खा जाऊँगा। उन सबको छोड़कर आज तो मैं इस धनुष

की रस्सी को ही खाता हूँ। उसमें बाण लगा था वह बाण उसके तालु में घुस गया। पाप के उदय से वह डोरी खाते हुए बहुत कष्ट से मरा।

हे कुमार! जैसे बहुत सुख की इच्छा करने से सियार का मरण हो गया, वैसे तुम इस वर्तमान के सांसारिक सुख को छोड़कर अधिक सुख के लिये घर को छोड़ जाओगे तो हास्य को पाओगे।

जम्बूकुमार मामा की कथा सुनकर उत्तर देने के लिये एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामी की कथा

एक अति दरिद्री मजदूर था जो वन से ईंधन लाकर व बेचकर पेट भरता था। एक दिन वन से कन्धे पर भारी बोझा लाया था। दोपहर को उस भार को यत्न से रखकर अपने घर में ठहरा। वह बेचारा बहुत प्यासा था। तालू सूख गये थे। बोझा लाने का भी कष्ट था। भार रखकर एक वृक्ष के नीचे शान्ति को पाकर क्षणमात्र के लिये सो गया। नींद में उस मजदूर ने स्वप्न देखा कि वह राज्यपद पर विराजित है। मणि मोती से जड़े हुए सिंहासन पर बैठा है। बार-बार चमर ढर रहे हैं। बन्दीजन विरद बखान रहे हैं। हाथी, घोड़े आदि बहुत परिवार हैं। फिर देखा कि राजमहल में बैठा है। चारों तरफ स्त्रियाँ बैठी हैं। उनके साथ हास्य-विनोद हो रहा है। इतने ही में उसकी भूख से पीड़ित स्त्री ने लकड़ी से व पैरों से ताड़कर उसको जगाया। यकायक उठा। उठकर विचारने लगा कि वह राज्यलक्ष्मी कहाँ चली गयी। देखते-देखते क्षण मात्र में नाश हो गयी।

हे मामा! इसी तरह स्त्री आदि का संयोग सब स्वप्न के समान क्षणमात्र में छूटनेवाला है व इनका संयोग प्राणी के प्राणों का अपहरण करनेवाला है, ऐसा समझकर कौन बुद्धिमान दु:खों के स्थान में अपने को पटकेगा।

विद्युच्चर की कथा

जम्बूस्वामी की कथा सुनकर बुद्धिमान विद्युच्चर चौथी कथा कहने लगा। रात्रि का अन्तिम प्रहर हो चला था। एक कोई नट था जो बड़ा चतुर व कलाविज्ञान का जाननेवाला था। बड़ा विख्यात था। उसका नाम कुतूहली था। एक दिन राजा के सामने बड़ी चतुराई से नृत्य दिखाया, साथ में कई नृत्यकारिणी भी आभूषण पहने नाच रही थीं। नृत्य को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। इनाम में सुवर्णादि व वस्त्रादि दिये। राजा के दिये हुए प्रसाद को पाकर वे सब नट निद्रा के वशीभूत होकर वहीं सो गये। रात्रि को जागकर जा नहीं सके। नर्तकी आदि सब गाढ़ नींद में सो गये। तब प्रधान नट पाप बुद्धि से जागता ही रहा और मन में विचारने लगा कि मैं इन सबको यहीं छोड़कर सर्व सुवर्णादि लेकर क्षण में भाग जाऊँ। जैसे वह सर्व द्रव्य लेकर भागने लगा वैसे ही सब नर्तकी जाग पड़ीं और उस प्रधान नट को चोरी के अपराध में राजा के पास ले गयीं। राजा ने देखकर क्रोध किया व उचित दण्ड दिया।

वैसे ही हे भागिनेय जम्बूस्वामी! तुम तो बहुत बुद्धिमान हो, बहुत द्रव्य के लाभ के लिये इस सम्पदा को छोड़कर मत जाओ, पीछे पछताना पड़ेगा।

इस कथा को सुनकर प्रभावशाली जम्बूकुमार इस कथा के

उत्तर में एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामी की कथा

बनारस नगर में एक महान राजा प्रसिद्ध लोकपाल नाम का था जो राज्य का भार सहन करने में चतुर था। उसकी पटरानी महासुन्दर मनोरमा नाम की थी। एक दिन राजा वन में शिकार खेलने के लिये गया था, तब उसकी रानी के परिणाम कामभाव से पीड़ित हो गये। उसने एक चतुर दूती को बुलाकर अपने मन का हाल कह दिया कि हे माता! मैं काम की बाधा सहने को असमर्थ हूँ, तू ही मेरी रक्षा करनेवाली है, तू शीघ्र किसी सुन्दर तरुण पुरुष को यहाँ ला।

वह महापापिनी दूती कहने लगी—हे सुन्दरी! तू शोक न कर, मेरे होते तेरी इच्छा पूर्ण होगी। मैं अपनी बातों से कामभाव से विरक्त योगियों को भी मोहित कर सकती हूँ तो दूसरे साधारण काम से पीड़ित मानव कीटों की तो बात ही क्या है? वह रानी अपने महल पर बैठी हुई मार्ग में देख रही थी। उसने एक चंग नाम के सुनार को जाते देखा, देखकर उस पर मोहित हो गयी।

दूती को कहा कि मेरे जीवन के लिये इस पुरुष को किसी उपाय से बुला लो। दूती गयी व अपनी माया से उस चंग को मनोरमा के पास ले आयी। जैसे ही वह रानी उस पुरुष को लेकर अपने कमरे में गयी व रतिक्रीड़ा के लिये शय्या पर बैठी थी कि इतने में राजा हाथी पर चढ़े हुए आ गये। राजा को आते देखकर सुनार घबड़ाकर भयभीत हो काँपने लगा।

रानी ने एक छिपे हुए गहरे घड़े में उस चंग को छिपा दिया और आप राजा के सामने जाकर उसे स्नेह सहित घर में लायी।

वह चंग छह माह तक उसी घड़े में वास करता रहा व मनोरमा के साथ कामभोग करता रहा। मनोरमा झूठन फेंकने के बहाने से उसको भोजन पहुँचा देती थी।

छह मास वहाँ रहने से उसके शरीर में कोढ़ का रोग हो गया। एक दफे राजा की आज्ञा से गहरे घड़े को पानी से धोया जाने लगा। तब वह उसकी मोरी से बाहर निकलकर भागकर नदी के किनारे पर आया। जब उसके जानकार लोगों ने पूछा कि तुम्हारा शरीर तो सुवर्ण के ही समान था, ऐसा कोढ़ी कैसे हो गया? उसने बात बनाकर कह दी कि मेरी सुन्दरता को देखकर पाताललोक की कन्याएँ देवियाँ मुझे बड़े आदर से ले गयीं। जब मैं अपने घर लौटने लगा तब उन दुष्टाओं ने क्रोध करके मेरे शरीर को बिगाड़ दिया।

लोग स्वभाव से ही सत्य नहीं बोलते हैं तो जब कोई कारण हो तब न बोले तो क्या आश्चर्य? यही दशा सुनार की हुई। वह धीरे-धीरे अपने घर में आया। वहाँ पैसों के द्वारा सुगन्ध द्रव्यों से उबटन किये जाने पर वह सुन्दर शरीर फिर हो गया। एक दफे वह किसी काम से मार्ग में जा रहा था, तब राजमहल के पास पहुँचा तब उसे मनोरमा ने देख लिया और संकेत से उसे बुलाने लगी।

तब चंग ने कहा—हे दुष्ट! तेरे साथ अब स्नेह नहीं करना है, तेरे घर से जो दु:ख पाया है, उसे मैं एक क्षण भी भूल नहीं सकता हूँ। अभी भी मेरे शरीर से दुर्गन्ध नहीं निकलती है। अब मैं कष्ट से छूटा हूँ। फिर मैं इस विचार रहित काम को नहीं करूँगा।

इसी तरह हे मामा! मैं इस तुच्छ इन्द्रिय सुख के लिये तिर्यंच आदि गतियों में जाकर दु:ख उठाना नहीं चाहता हूँ। बहुत प्रलाप से क्या? आप ठीक समझ लो, मैं कदापि इन्द्रिय सुख का भोग नहीं चाहता हूँ। चाहे आप सैकड़ों कथाओं से मेरा समाधान करो।

विद्युच्चर चोर ने निश्चय कर लिया कि कुमार का मन दृढ़ है। यह भी स्वयं निकट भव्य था, स्वयं वैराग्यवान हो गया। और कुमार की दृढ़ता की प्रशंसा करने लगा—हे स्वामी! आप बड़े बुद्धिमान हैं, आप तीन लोक में धन्य हैं। आप देवों से भी पूज्य हैं, मेरी क्या बात है महामतिमान्! आप संसार-समुद्र से पार हो गये हैं। आप धर्मरूपी कल्पवृक्ष के मूल हैं। आप अवश्य कर्मरूपी पर्वतों के मेटनेवाले हैं। इस प्रकार बहुत स्तुति करके विद्युच्चर ने अपना सब वर्णन चोरी आदि करने का सच्चा-सच्चा कह दिया।

इतने में सूर्योदय का समय हो गया। दिशाएँ लाल वर्ण की हो गयी। मानो उस समय जम्बूस्वामी के भीतर का राग ही निकलकर आकाश में छा गया। इस समय कितने ही सम्यग्दृष्टि भव्यजीव बड़े आदर से कायोत्सर्ग करते हुए ध्यान में लीन हो गये। कितने ही श्री जिनेन्द्र की पूजा करने का उद्यम करने लगे। जल, चन्दन, धूपादि सामग्री एकत्र करने लगे, इतने ही में उदयाचल से सूर्य का उदय हो गया, मानो यह सूर्य अपनी किरणों को फैलाकर स्वामी का दर्शन ही कर रहा है। जिस धर्म के प्रमाद से महापुरुष अविनाशी सुख भोगते हैं या इन्द्र व चक्रवर्ती का सुख भोगते हैं, उस धर्म का सेवन धर्मात्माओं को करते रहना चाहिए।

ग्यारहवाँ अध्याय

श्री जम्बूस्वामी का निर्वाण

पंचकल्याणक के भागी नव इन्द्रादि देवों से नमस्कृत श्री नमि तीर्थंकर को तथा जगत के गुरु व धर्मरूपी रथ की धुर के समान श्री नेमिनाथ तीर्थंकर को नमन करता हूँ।

जम्बूस्वामी की दीक्षा

सवेरा होते ही अरहदास सेठ के घर में क्या हुआ सो कहता हूँ—

श्री जम्बूस्वामी के वृत्तान्त को राजा श्रेणिक ने नहीं सुना था, इसलिए सवेरे ही अरहदास सेठ सब हाल कहने को स्वयं राजमहल में गया। राजा श्रेणिक ने सर्व हाल सुना। क्षणभर विचार में पड़ा। फिर जम्बूस्वामी के वैराग्य से आनन्दपूर्ण हो राजा धर्मबुद्धिवश सेठ के स्नेहवश अरहदास के घर चला। राजा की आज्ञा से दुन्दुभि बाजे बजने लगे। ये बाजे इस विषय के सूचक थे कि वे जम्बूकुमार को केवलज्ञान के साम्राज्य की प्राप्ति होगी। जिस तरह तीर्थंकरों के कल्याणकों में देवगण आकाशमार्ग में आते हैं। वैसे श्रेणिक राजा मृदंगादि बाजों की ध्वनि के साथ बड़े उत्साह से सेठ के घर स्नेह से पूर्ण कुटुम्ब सहित श्री जम्बूकुमार के चरण-कमल की वन्दना को आया। राजा श्रेणिक ने स्वामी के विकार रहित नेत्रों से व मुखादि की चेष्टा से जान लिया कि स्वामी वैराग्य में आरूढ़ वीर योद्धा के समान हैं। यद्यपि स्वामी वैरागी थे तथापि अपनी भावशुद्धि के लिये प्रभावना के अर्थ

स्वामी को नवीन वस्त्राभूषण से अलंकृत किया। चन्दनादि से अंग को चर्चा, मस्तक पर मुकुट रखा। जैसे इन्द्र सुमेरु पर्वत पर जिनेन्द्र तीर्थंकर को ले जाता है, वैसे राजा ने दीक्षावन में जम्बूकुमार को ले जाने की शोभा की।

स्वामी ऐसे शोभने लगे मानो मुक्तिरूपी कन्या के स्वयंवर के लिये तैयार हुए हैं। फिर कुमार की अनुमति पाकर राजा और सेठ ने अपने हाथों से स्वामी को पालकी में स्थापित किया। जिस समय स्वामी वन में जाने को तप के लिये तैयार हुए, सर्व नागरिक दर्शन करने को आदरपूर्वक आये, जनसमुदाय अपने-अपने घर का काम छोड़कर ऐसा दौड़ा मानो किसी अदृष्ट को देखने के कौतुक से आ रहे हैं। सर्व नगर के लोग परस्पर कहने लगे—'धन्य है स्वामी जो चारों स्त्रियों को छोड़कर सिद्धि के सुख की अभिलाषा से दीक्षित होने जा रहे हैं।' राजघराने में भी हाहाकार हो गया। कितने ही दु:खित होकर स्नेह के भार से मूर्छित हो गये। इसी मध्य में सती जिनमती माता आँसू निकालती गद्गद् वचन बोलती आयीं—

हे पुत्र! क्षणभर अपनी माता की तरफ देख। ऐसा दीन वचन कहती हुई मोह से मूर्छा खाकर गिर पड़ी। चेष्टारहित हो गयीं। अपनी सास को मूर्छित देखकर चारों वधुएँ महामोह से व शोक से पूर्ण हो वाणी निकालती हुई रुदन करने लगीं।

हे नाथ! हे प्राण्नाथ! हे कामदेव! हम अनाथ हो रहे हैं। हमें छोड़ क्यों जा रहे हैं? दैव को धिक्कार हो जिसने तप के लिये आपकी बुद्धि बना दी है। दैव ने हमारे महादु:ख को देखते हुए भी करुणा नहीं की।

हे कृपानाथ! अब भी प्रसन्न हो, परिणाम कोमल करो, नाना प्रकार भोगों को भोगो। हे नाथ! हम तुम्हारे बिना दीन हो शोभा को कैसे पायेंगी, जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि शोभा को नहीं पाती है। वे स्त्रियाँ दीन वचन कह रही थी। उधर चन्दनादि छिड़ककर जिनमती माता को होश में लाया गया। सावधान होकर फिर सती जिनमती माता स्नेह से वीर वैराग्य में आरूढ़ स्वामी से कहने लगीं—

हे पुत्र! कहाँ तेरा केले के पत्ते के समान कोमल शरीर और कहाँ खड्ग की धार के समान जैन का कठिन तप? यदि कोई हाथ के अंगूठे से अग्नि को जलावे तो उसके मस्तक पर पहुँच ही जाती है। उससे भी कठिन काम तप है।

हे बालक! तू दुःखदाई भूमिशयन कैसे करेगा? बाहु को लम्बायमान करके तू रात को कायोत्सर्ग ध्यान कैसे करेगा? अपने वृद्ध माता-पिता को दुःखी छोड़कर तू वन में क्यों जाता है? तेरे बिना ये चारों वधुएँ दुःखी होंगी व अकेली उसी तरह शोभा नहीं पायेगी जैसे भावशून्य क्रिया शोभा को नहीं पाती है। कहा है—

इमा वध्वश्च तस्त्रोऽपि त्वामृते दुःखपूरिताः।
एकाकिन्यो न शोभते भावशून्याः क्रिया इव॥30॥

इस तरह बहुत प्रकार से विलाप करती हुई माता को देखकर दृढ़ संकल्पी जम्बूकुमार कहने लगे—

हे माता! शीघ्र ही शोक को छोड़, कायरपना त्याग। इस संसार की अवस्था सब अनित्य है, ऐसी निरंतर भावना मन में

कर। हे माता! मैंने इन्द्रियों के विषयों का सुख बहुत बार भोग करके झूठन के समान छोड़ा है। ऐसे अतृप्तिकारी सुख की हमें इच्छा नहीं करनी चाहिए।

यह प्राणी स्वर्गों के महाभोगों से तृप्त न भया तो यह स्वप्न के समान मध्यलोक के तुच्छ भोगों से कैसे तृप्त होगा? मैं न मालूम कितनी बार नारकी, देव, तिर्यंच तथा मनुष्य हुआ हूँ। कहा है—

कति न कति न वारान् भूपतिर्भूरिमूतिः।
कति न कति न वारानत्र जातोऽस्मि कीटः॥
नियतिमिति न कस्याप्यस्ति सौख्यं न दुःखं।
जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुचा वा॥

भावार्थ—मैं कितने ही दफे बड़ी विभूति सहित राजा हुआ हूँ। कितने ही दफे मैं कीट हुआ हूँ। इस चंचल संसार में किसी भी प्राणी को न कभी निश्चलता से सुख होता है न दुःख होता है। इसलिए सुख में हर्ष व दुःख में शोक करना वृथा है।

इत्यादि अमृतमयी उचित वाक्यों से माता को सम्बोध करके जम्बूस्वामी शीघ्र ही घर से निकले। घर से विमुख होकर वन की ओर जाते हुए स्वामी ऐसे शोभत थे जैसे बन्धन तुड़ाकर स्वच्छन्द महा गजराज शीघ्र वन को जाता हुआ शोभता है। जम्बूकुमार को जाते हुए सब ही निकट भव्यजीव स्तुति करने लगे—देखो! राज्य समान लक्ष्मी को तृण के समान मानकर कुमार जा रहे हैं। इस तरह आनन्द सहित श्रेणिक आदि राजा स्वयं पालकी को कन्धों पर व हाथों हाथ लेते हुए वन की तरफ पहुँचे।

यह वन अकाल में ही फलफूलों से भरा हुआ था, बड़ा ही सुगन्धित था, पवन के योग से शाखाओं के अग्रभाग हिल रहे

थे। मानों स्वामी के आने पर हर्ष नृत्य कर रहे हैं। पालकी से उतरकर जम्बूकुमार सौधर्म आचार्य के निकट गये और तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया।

फिर मुनि महाराज के सामने योग्यस्थान पर खड़े हो गये। फिर कुमार ने दोनों हाथ जोड़ मस्तक नमाकर बड़े आदर से विनय की—दयासागर! यथार्थ चारित्रवान मैं नाना प्रकार के हजारों दु:खों से भरी हुई कुयोनिरूपी संसारसमुद्र के आवर्तों में डूब रहा हूँ। मेरा उद्धार इस भवसागर से कीजिए। आज मुझे कृपा करके संसार-हरण करनेवाली पवित्र, उपादेय, कर्मक्षय समर्थ मुनिदीक्षा प्रदान कीजिए।

आचार्य ने आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर विरक्तचित्त स्वामी जम्बूकुमार ने गुरु महाराज के सामने अपने शरीर से सब आभूषण उतार दिये। अपने मुकुट के आगे लटकनेवाली फूलों की माला इस तरह दूर कर दी, मानो कामदेव के बाणों को ही बलपूर्वक दूर किया हो। रत्नमयी मुकुट भी शीघ्र ही उतारा। मानो मोहरूपी राजा के सर्व मान को ही जीत लिया है। फिर हार आदि गहनों को उतारा। रत्नमयी अंगूठी अँगुली से दूर की। फिर अपने शरीर से सुन्दरता के समान वस्त्रों को उतार दिया। मानो चतुर पुरुष ने माया के पटलों को ही फेंक दिया हो। मणियों से वेष्ठित पड़े हुए कमर की करधनी को इस तरह तोड़ डाला, मानों संसार से वैरागी ने संसार का दृढ़ बन्धन ही तोड़ डाला। फिर कानों के दोनों कुण्डल निकाल दिये, मानो संसाररूपी रथ के दोनों पहियों को ही तोड़ डाला।

फिर स्वामी ने दोनों हाथों से शास्त्र की पद्धति से लीला मात्र

में पाँच मुष्टि से अपने केशों का लोच कर डाला। उस समय 'ॐ नमः' मन्त्र उच्चारण किया। फिर श्री गुरु की आज्ञा से क्रम से शुद्ध अट्ठाईस मूलगुणों को ग्रहण किया। वे 28 मूलगुण नीचे प्रकार हैं—

28 मूलगुण

5 महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग।

5 समिति—ईर्या (भूमि निरखकर चलना), भाषा (शुद्ध वाणी कहना), एषणा (शुद्ध आहार लेना), आदान निक्षेपण (देखकर रखना उठाना), प्रतिष्ठापन (मलमूत्र विसर्जन निर्जन्तु भूमि पर करना)।

5 इन्द्रिय निरोध—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, इनके विषयों की इच्छाओं को रोकना।

6 आवश्यक क्रिया—नित्य छह काम अवश्य करना-सामायिक, प्रतिक्रमण (गत दोष का पश्चाताप), प्रत्याख्यान (आगे दोष न लगाने की प्रतिज्ञा), स्तुति (24 तीर्थंकर स्तवन), वन्दना (किसी एक तीर्थंकर की वन्दना), कायोत्सर्ग (ममत्व त्याग)।

7 फुटकर नियम—

(1) केशों का लोंच, (2) अचेलकपना (वस्त्र त्याग, यह शुद्ध चारित्र का कारण है), (3) स्नान त्याग (अहिंसा महाव्रत के लिये स्नान न करना), (4) प्रासुक भूमि में शयन (वैराग्यादि की वृद्धि के लिये), (5) काष्टादि से दन्तवन त्याग (वैरागियों को दाँतों की शोभा की आवश्यकता नहीं है), (6) स्थिति

भोजन (कायोत्सर्ग से खड़े होकर भिक्षा लेना), (7) एकबार भोजन (दिवस में एक बार भोजन शरीर की स्थिति के लिये हाथ में लेना, भोगों के लिये कदापि न लेना।)

28 मूल गुण—

श्री जिनेन्द्रों ने ये अट्ठाईस मूलगुण साधुओं के लिये बताये हैं। इन्हीं के उत्तर भेद (सूक्ष्म भेद) चौरासी लाख हैं।

इन सब नियमों को मोक्ष के चाहनेवाले साधुओं को मरणपर्यन्त पालना चाहिए। इन सबके समूह का नाम मुनि का चरित्र है।

गुणों में गम्भीर व श्रेष्ठ गुरु से मुनि का चारित्र सुनकर शुद्ध बुद्धिधारी जम्बूस्वामी ने सर्व व्रत व नियम ग्रहण कर लिये। जिस समय स्वामी ने नग्न होकर मुनिव्रत धारण किया, उस समय श्रेणिक आदि सर्व राजाओं ने नगरवासियों ने आनन्दभाव से जय-जय शब्द किये। उस समय कितने ही शुद्ध सम्यक्त्व के धारी राजाओं ने भी यथाजात दिगम्बर स्वरूप धारण करके मुनिपद स्वीकार किया। कोई चारित्र मोह के उदय से मुनि का चारित्र पालने को असमर्थ थे, उन्होंने श्रावक के व्रतों को बड़े आदर से ग्रहण किया।

विद्युच्चर मुनि

विद्युच्चर चोर भी संसार शरीर भोगों से वैरागी हो गया था। उसने भी सर्व परिग्रह का त्याग कर मुनिव्रत ग्रहण किया। विद्युच्चर के साथ प्रभव आदि पाँच सौ राजकुमार चोरी करते थे, वे सब ही पाँच सौ मुनि हो गये।

जम्बूकुमार परिवार दीक्षा

फिर अरहदास श्रेष्ठी भी वैराग्यवान हो गये। स्त्री सहित सर्व घर के परिग्रह को छोड़कर मुनिराज हो गये। जिनमती माता भी संसार को असार जानकर सुप्रभा आर्यिका के समीप आर्यिका के व्रतों से विभूषित हो गयीं। पद्मश्री आदि चारों युवती स्त्रियों ने भी संसार की क्षणिक अवस्था जानकर सुप्रभा गुराणी के पास आर्यिका के व्रत धारण कर लिये।

फिर श्रेणिक आदि राजाओं ने सौधर्म आदि सर्व मुनीश्वरों को नमस्कार करके अपने घर की ओर जाने का उद्यम किया।

जम्बूस्वामी सम्यक्चारित्र से विभूषित हो अपने को कृतार्थ मानने लगे। उपवास ग्रहण कर मौन सहित वन में ध्यान में लीन हो गये। विद्युच्चर आदि मुनियों ने भी यथाशक्ति उपवास किया और सब ध्यान में तन्मय हो गये। उपवास पूर्ण होने पर समाधि के अन्त में महामुनि जम्बूस्वामी ने सिद्ध भक्ति पढ़ी, फिर पारणा के लिये प्रासुक मार्ग में ईर्या समिति से चलने लगे।

जम्बूस्वामी का प्रथम आहार

संयमी जम्बूकुमार ने राजगृह नगर में प्रवेश किया। नगरवासियों ने दूर से देखा कि कोई पवित्रात्मा पुण्यमूर्ति आ रहे हैं। सर्व जन देखते ही दूर से विनय सहित नतमस्तक हो नमस्कार करने लगे। कितने ही लोग चित्र के समान दर्शन करके आश्चर्य सहित परस्पर कहने लगे—जो पूर्व में सबसे मुख्य थे, वे ही आज मुनीश्वर हो गये हैं।

अहो! दैव का विचित्र माहात्म्य है। कर्मों के उदय से कौन

जानता है कि क्या किस तरह भावी है? कितने ही श्रावक दान देने के उत्सुक मार्ग में स्वामी के प्रतिग्रहण करने के लिये अलग-अलग खड़े हुए राह देख रहे थे। कोई कहने लगे—स्वामी! यहाँ कृपा करो, अपने चरणकमल की रज से मेरा घर पवित्र करो।

हे जम्बूस्वामी महामुनि! हमारे घर में तिष्ठो तिष्ठो, शुद्ध प्रासुक अन्न तैयार है, हम भक्तिपूर्वक देना चाहते हैं, आप ग्रहण करो। श्रावकजन बार-बार कह रहे हैं—स्वामी! पधारिये, हमारे घर पधारिये। कितने ही कहने लगे—स्वामी का शरीर कामदेव के समान है, वय छोटी है, सुकुमार शरीर है, कठिन तप किस तरह करेंगे? कितने ही वन्दना के बहाने कामदेव के समान रूपवान निष्काम स्वामी को देखने के लिये सामने आ गये। इस तरह श्रावकजन नाना प्रकार की बातें कह रहे थे।

इतने में बिना किसी चिन्ता के 'जिनदास' सेठ के घर पर खड़े हो गये। जिनदास ने स्वामी को पड़गाहा। स्वामी ने मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से नवकोटि शुद्ध आहार ग्रहण किया। तब सेठ के आँगन में दान के अतिशय से पुष्पवृष्टि आदि पाँच आश्चर्य हुए। आहार लेकर शुद्धात्मा स्वामी सांसारिक वांछा से रहित होकर भी दया के भाव से भूमि निरखकर वन की ओर चल पड़े। ईर्यापथ शुद्धि से चलकर धीरे-धीरे जम्बू मुनि वन में श्री सौधर्माचार्य के निकट आये। महान तेजस्वी जम्बू मुनि को एक निर्वाण लाभ की ही भावना थी, इसीलिए तप की सिद्धि करना चाहते थे।

कुछ साल के पीछे सौधर्म आचार्य को स्वाभाविक केवलज्ञान

का लाभ हो गया और अनन्त स्वभावधारी सर्वज्ञ केवली के चरणों में रहकर जम्बूस्वामी महामुनि ने कठिन तप का साधन किया।

जम्बूस्वामी का तप

स्वामी बारह प्रकार का तप करने लगे। आत्मा की विशुद्धि के लिये एक दो आदि दिनों की संख्या से उपवास करते थे। शान्तभावधारी एक ग्रास, दो ग्रास आदि लेकर भी महान अवमोदर्य तप करते थे। लोभरहित स्वामी यथा अवसर भिक्षा को जाते हुए घरों की संख्या कर लेतेथे। इस तरह वृत्तिसंख्यान तीसरा तप साधन करते थे।

इन्द्रियों को जीतने के लिये व काम विकार की शान्ति के लिये रस त्याग नाम के चौथे तप को करते थे। आत्मवशी जम्बू मुनिराज वन पर्वत आदि शून्य स्थानों में बैठकर विविक्तशय्यासन नाम का पाँचवाँ तप किया करते थे। महान उपसर्ग को जतीने के लिये शस्त्र के समान कायक्लेश नाम के छठे तप को करते थे। श्री जम्बूस्वामी परम धैर्य के एक महान पद थे, महान वीर्यधारी थे, छह प्रकार के बाहरी तप को सहज में ही साधन करते थे।

इसी तरह स्वामी ने छह प्रकार का अन्तरंग तप साधन किया। मन-वचन-काय सम्बन्धी कोई दोष की शुद्धि के लिये प्रथम प्रायश्चित्त तप को स्वीकार किया। निश्चयरत्नत्रयरूपी शुद्धात्मिक धर्म में तथा अरहन्त आदि पाँच परमेष्ठियों में विनय तप को करते थे। मुनिराजों को नमस्कार व उनकी सेवा को नहीं उल्लंघन करते हुए तीसरा सुखदायी वैय्यावृत्य तप पालन किया करते थे।

शुद्धात्मा के अनुभव का अभ्यास करते हुए निश्चय स्वाध्यायरूपी चौथे परम तप का साधन करते थे। शरीरादि परिग्रह में ममत्व भाव को बिल्कुल दूरकर स्वामी ने पाँचवाँ व्युत्सर्ग तप साधन किया। सबसे श्रेष्ठ तप ध्यान है। सर्व चिन्ता से रहित होकर चैतन्य भाव का ही आलम्बन करके स्वामी ने छठा ध्यान तप का आराधन किया। ये छह अन्तरंग शुद्ध तप मोक्ष के कारण हैं। वैराग्यभावधारी स्वामी ने दोषरहित इस सबों को पाला। यथाजात स्वरूप के धारी मन, वचन, काम को निरोध करके तीन गुप्तियों को पालते थे।

स्वामी ने कषायरूपी शत्रुओं की सेना को जीतने के लिये कमर कस ली। शान्तभावरूपी शस्त्र को लेकर उन कषायों का सामना करने लगे। कामदेव की स्त्री रति को तो स्वामी ने पहले ही दूर से ही भस्म कर दिया था। अब कामदेवरूपी योद्धा को लीला मात्र में जीत लिया। द्रव्य व भाव श्रुत के भेद से नाना प्रकार अर्थ से भरी हुई द्वादशांग वाणी के बुद्धिमान जम्बूस्वामी मुनि पार पहुँच गये थे।

सौधर्माचार्य का निर्वाण

इस तरह जब जम्बूस्वामी को अनेक प्रकार तप करते हुए अठारह वर्ष एक क्षण के समान बीत गये थे, तब माघ सुदी सप्तमी के दिन सौधर्मस्वामी विपुलाचल पर्वत से निर्वाण प्राप्त हुए। तब सौधर्मस्वामी का आत्मा अनन्त सुख के समुद्र में मग्न हो गया। वे अनन्त बल, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान के धारी निरन्तर शोभने लगे। अपने कल्याण के लिये मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

जम्बूस्वामी को केवलज्ञान

उसी दिन जब आधा प्रहर दिन बाकी था, तब श्री जम्बूस्वामी मुनिराज को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। पहले उन्होंने मोहशत्रु का क्षय किया। फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय कर्म का क्षय कर लिया। व अनन्त चतुष्टय के धारी अरहन्त हो गये। पद्मासन से विराजित थे, तब ही केवलज्ञान लाभ की पूजा करने के लिये देवगण अपने परिवार सहित व अपनी विभूति सहित बड़े उत्सह से आ गये। इन्द्रादिदेवों ने स्वामी को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया जय-जय शब्दों का उच्चारण किया तथा बड़े हर्ष से प्रभु की भक्तिपूर्वक अष्टद्रव्य से पूजा की।

इन्द्रों ने अनुपम गद्य-पद्य गर्भित स्तुति पढ़ी। उस स्तुति में यह कहा—प्रचण्ड कामदेव के दर्परूपी सर्प को नाश करने के लिये आप गरुड़ हैं, आपकी जय हो, केवलज्ञान सूर्य से तीन लोक को प्रकाश करनेवाले प्रभु की जय हो। इस प्रकार अन्तिम केवली जिनवर की अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करके अपने को कृतार्थ मानते हुए देवादि सब अपने-अपने स्थान पर गये।

विपुलाचल से जम्बूस्वामी का निर्वाण

पश्चात् श्री जम्बूस्वामी जिनेन्द्र ने गन्धकूटी में स्थित हो उपदेश दिया। स्वामी ने मगध से लेकर मथुरा तक व अन्य देशों में अठारह वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार किया। फिर केवली महाराज विपुलाचल पर्वत पर पधारे। आठों कर्मों से रहित होकर निर्वाण को प्राप्त हुए, नित्य अविनाशी सुख के भोक्ता हो गये।

पश्चात् अरहदास मुनीश्वर भी समाधिमरण करके छट्ठे

देवलोक पधारे। श्रीमती जिनमती आर्यिका ने स्त्रीलिंग छेद दिया और उत्तम समाधिमरण करके ब्रह्मोत्तर नाम के छठे स्वर्ग में इन्द्रपद पाया। चारों वधुएँ आर्यिका पद में चम्पापुर के श्री वासुपूज्य चैत्यालय में थीं। वहाँ प्राण त्यागकर महर्द्धिक देवियाँ हुईं।

विद्युच्चर मुनि मथुरा में

विद्युच्चर नाम के महामुनि तप करते हुए ग्यारह अंग के पाठी हो गये। विहार करते हुए पाँच सौ मुनि के साथ एक दफे मथुरा के महान वन में पधारे। वन में ध्यान के लिये बैठे कि सूर्य अस्त हो गया। मानों सूर्य मुनियों पर होनेवाले घोर उपसर्ग को देखने को असमर्थ हो गया। उसी समय चन्द्रमारि नाम की वनदेवी ने मुनियों से निवेदन किया कि यहाँ आज से पाँच दिन तक आपको नहीं ठहरना चाहिए। यहाँ भूत प्रेतादि आकर आपको बाधा करेंगे, आप सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिए आप सब इस स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में विहार कर जाओ। ज्ञानियों को उचित है कि संयम व ध्यान की सिद्धि के लिये अशुभ निमित्तों को छोड़ दें। ऐसा कहकर चन्द्रमारी देवी अपने स्थान को चली गयी। मुनियों के भावों की परीक्षा लेने को विद्युच्चर ने कहा कि आप सब वृद्ध हो, विचारशील हो, हठ न करके प्रमाद त्याग करके यहाँ से अन्य स्थान को चले जाओ। ऐसा सुनकर सर्व मुनि जो नि:शंकित अंग के पालनेवाले थे। नि:शंक हो बोले- परमागम में योगी को आज्ञा है कि उपसर्ग पड़े तो सहन करे। अब रात्रि का समय है। जो हमारे शुभ व अशुभ कर्म के उदय से होना होगा सो होगा, हम तो अब यहीं मौन साधकर बैठेंगे। उनके वचनों को सुनकर विद्युच्चर मुनि को सन्तोष हुआ। धैर्यवान

विद्युच्चर भी सर्व मुनियों के साथ मौन लेकर योग मुद्रा में लीन हो गये।

घोर उपसर्ग

रात्रि बढ़ गयी। अन्धेरा चारों तरफ छा गया। मुख देखना असमर्थ हो गया, आधी रात का समय आ गया, तब वही भूत, प्रेत, राक्षस भयानक रूप बनाकर इधर-उधर दौड़ते हुए आये। कितने डांस, मच्छर होकर काटने लगे, कितने दंशक सर्प के समान होकर फुंकार करने लगे, कितने तीक्ष्ण नख व चोंचधारी मुर्गे बन गये व सताने लगे, कितने ही ने रक्त से मस्तक व हाथ रंग लिये, निर्धूम अग्नि के समान भयानक मुख बना लिया, कण्ठ में हड्डियों की मालाएँ बाँध ली, लाल आँख कर ली, मुख को फाड़ते हुए आये। कितने ही ने हाथों से मस्तक के बालों को छिटका लिया, छाती में रूण्डमाल डाल ली, हँसने लगे, इसको मारो ऐसा भयानक शब्द करने लगे। कोई निर्दयी आकाश में खड़े हुए दूसरों को प्रेरणा करने लगे। इस तरह पाप कार्य में रत राक्षसों ने जैसा मुनियों पर उपसर्ग किया उसका कथन नहीं हो सकता है। तब महा धीरवीर विद्युच्चर मुनि ने अपने मन में शुद्ध बारह भावनाओं का चिन्तवन किया।

जीवन की आशा छोड़कर शरीर को क्षणभंगुर जानकर बड़े भाव से संन्यास धरण कर लिया व ध्यान में स्थिर हो गये। व उसी तरह अन्य पाँच सौ मुनियों ने भी संसार के स्वरूप का विचारकर शान्ति से उपसर्ग सहन किया। कितने ही स्वरूप के मनन में, कितने ही निश्चल ध्यान में मेरु पर्वत के समान स्थिर

हो गये। वे सब ज्ञानी थे, कर्म के विपाक को जानते थे। कहा है—

धर्म सर्वसुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्ति परः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
तस्मिन् श्रीजिनधर्मशर्भनिशतैर्धर्मे मतिर्धार्यताम्॥150॥

भावार्थ—सर्व सुख का करनेवाला धर्म है, धर्म हितकारी है, बुद्धिमान धर्म का संग्रह करते हैं, धर्म से ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। इसलिए यह धर्म नमस्कार करनेयोग्य है। संसारी प्राणियों का धर्म से बढ़कर कोई और मित्र नहीं है। धर्म का मूल अहिंसा धर्म है। जो जिन धर्म के सुख में लीन होना चाहते हैं, उनको ऐसे धर्म में सदा प्रेमभाव धारना चाहिए।

बारहवाँ अध्याय

विद्युच्चर मुनि को सर्वार्थसिद्धि

अन्तराय कर्मों का नाश करनेवाले श्री पार्श्वनाथ भगवान को तथा आत्मिक गुणों में वर्द्धमान श्री वर्द्धमान भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

उपसर्ग जब पड़ रहा था, तब विद्युच्चरादि सर्व मुनि बारह भावनाओं की भावना इस तरह करने लगे। उनके नाम हैं— (1) अनित्य, (2) अशरण, (3) संसार, (4) एकत्व, (5) अन्यत्व, (6) अशुचित्व, (7) आस्रव, (8) संवर, (9) निर्जरा, (10) लोक, (11) बोधिदुर्लभ, (12) धर्म। जितने संयमी मुनि मोक्ष गये हैं, जा रहे हैं व जाएँगे, वे सब इन बारह भावनाओं को भाकर गये हैं, जा रहे हैं व जाएँगे।

अनित्य भावना

इस लोक में चर अचर जितने पदार्थ दिखते हैं, वे सब विभाव रूप में दिखते हैं। जितने स्थावर व त्रस जीव हैं, वे कर्मों के उदय से विभाव पर्याय में हैं। जब तक कर्मबीज का फल रहता है, तब तक वे रहते हैं। जब उनका निर्माण कर्मफल से है, तब वे नित्य कैसे हो सकते हैं ? कर्मों के उदय से जितनी शरीरादि बाहरी व रागादि अन्तरंग पर्यायें होती हैं, वे सब क्षणभंगुर हैं।

स्वानुभूति के द्वारा अपना आत्मा इन सर्व कर्मजनित दशाओं से भिन्न है, ये सर्व कर्मोदय से होनेवाली अवस्थायें अनित्य हैं। यह बात प्रमाण से, शास्त्र से, आगम से तथा स्वानुभूति से व

प्रत्यक्ष से भी सिद्ध हैं। इनमें उत्तम बुद्धिधारी मानव कैसे मोह कर सकते हैं ? जैसे सूर्य का उदय कुछ काल तक ही लगातार रहता है वैसे ही चारों गतियों में सर्व जीव किसी काल की मर्यादा को लेकर उत्पन्न होते हैं। जैसे पका हुआ फल वृक्ष से अलग हो अवश्य भूमि पर गिर पड़ता है। वैसे संसारी प्राणी आयु के क्षय से अवश्य मर जाते हैं।

इस लोक में प्राणी का जीवन जल के बुदबुदे के समान चंचल है, भोग रोग सहित है, जुबानी जरा सहित है, सुन्दरता क्षण में बिगड़ जाती है, सम्पत्तियाँ विपत्ति में बदल जाती हैं, नाशवन्त हैं, सांसारिक सुख मधु की बूँद के स्वाद के समान हैं, परम्परा दु:ख का कारण है। इन्द्रियों का बल, आरोग्य व शरीर का बल सब मेघों के पटल के समान विनाश होनेवाला है, राज्यमहल व राज्यलक्ष्मी इन्द्रजाल के समान चली जानेवाली है। पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि, मित्र, बन्धुजन, सज्जनादि सब बिजली के चमकार के समान चंचल हैं, देखते-देखते क्षणमात्र में नाश हो जाते हैं। इस तरह सब जगत की रचना को अनित्य जानकर सत्-पुरुषों को शरीर आदि में ममता नहीं करनी चाहिए। अपने आत्मा को नित्य व सनातन अनुभव करनायोग्य है।

अशरण भावना

इस चार गति रूप संसार में भ्रमण करते हुए प्राणी को जब मरणरूपी शत्रु पकड़ लेता है, तब कोई भी शरण नहीं है। जैसे वन में मृग के बच्चे को जब बाघ पकड़ लेता है, तब पुण्य के उदय बिना कोई और रक्षा नहीं कर सकता। आयु के क्षय होने पर अणिमा आदि शक्तियों के धारी देवों को भी स्वर्ग से च्युत

होना पड़ता है तो अन्य शरीरधारियों की क्या बात ? जब यमराज विकराल मुख करके सामने आ जाता है तब मणि, मन्त्र, औषधि आदि सर्व ही निरर्थक हो जाते हैं। जब यमराज क्रोधित होकर इन्द्र, चक्रवर्ती व विद्याधरों को पकड़ लेता है, तब कोई भी बचा नहीं सकता। इस जगत में कोई अपनी आत्मा का रक्षक नहीं है। यदि कोई रक्षक है तो वह एक जिन शासन है, उसी को ग्रहण योग्य मानकर बड़े पुरुषार्थ से उस जिनधर्म का साधन करना चाहिए। अरहन्त भगवान शरण हैं, सिद्ध महाराज शरण हैं, साधु महाराज शरण हैं, अरहन्त भाषित धर्म शरण है। बुद्धिमानों को उचित है कि इन चारों को ही सर्वदा अपना रक्षक माने। जगत में एक धर्म को ही रक्षक मानकर बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि व्यवहारनय से चारित्ररूप धर्म को पालें, व निश्चय से आत्मानुभवरूप धर्म को साधें।

संसार भावना

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावरूप भ्रमण की अपेक्षा यह संसार पाँच प्रकार है। सूक्ष्म ज्ञानियों ने द्रव्य संसार को दो प्रकार का कहा है। कर्म योग्य पुद्गलों के ग्रहण की अपेक्षा कर्म द्रव्य परिवर्तन व नोकर्म पुद्गलों के ग्रहण की अपेक्षा नोकर्म द्रव्य परिवर्तन इस लोक में तीन प्रकार पुद्गल स्वभाव से हैं—गृहीत, अगृहीत और मिश्रण। किसी विवक्षित जीव ने तीनों ही प्रकार के पुद्गलों को अनन्त बार कर्म तथा नोकर्म रूप से ग्रहण किया है, बारबार ग्रहण कर छोड़ा है, फिर ग्रहण किया है, जितना काल इस तरह ग्रहण में लगता है, सो द्रव्यसंसार है। ऐसा द्रव्य परिवर्तन इस संसारी जीव ने पूर्व अनन्त बार किया है।

(नोट – इसका विस्तार से स्पष्ट कथन गोम्मटसार से जानना योग्य है।)

आकाश का क्षेत्र जो लोक में है, वह अणुमात्र ही प्रदेशरूप भाव से असंख्यातप्रदेशी है। इस जीव ने हरएक प्रदेश में जन्म व मरण किया है। सुमेरु पर्वत के नीचे लोकाकाश के मध्य में आठ प्रदेश गोस्तनाकार प्रसिद्ध हैं। कोई जीव उन प्रदेशों को मध्य लेकर वहाँ जन्मा, आयु भोग करके मरा, फिर वह कहीं उत्पन्न हुआ सो गिनती में न लेकर वहीं फिर एक प्रदेश उल्लंघ करके जन्मे। इस तरह सर्व आकाश के प्रदेशों को जन्म लेकर व इसी तरह मर करके पूरा करे। एक जीव द्वारा क्रम से जन्म-मरण करते हुए जितना काल लगता है, उस सबके समुदाय को क्षेत्र संसार करते हैं। ऐसे क्षेत्र संसार को भी इस जीव ने अनन्त बार किया है।

अंशरहित काल की पर्याय समय है। जब अविभागी परमाणु एक कालाणु पर से निकटवर्ती कालाणु पर मन्दगति से जाता है, तब समय पर्याय उत्पन्न होती है। इस व्यवहार काल के समूहरूप दो प्रसिद्ध हैं। पहला उत्सर्पिणी जहाँ शरीरादि बल सुख अधिक होते हैं। दूसरा अवसर्पिणी जब शरीरादि बल सुख कम होते जाते हैं। जिनागम में हर एक के छह-छह भेद कहे हैं। हर एक की काल मर्यादा दस कोड़ाकोड़ी सागर की है। कोई जीव उत्सर्पिणी के पहले समय में जन्मे, आयु पूर्ण कर मरे, फिर कहीं यह जन्म लेवे, जब कभी किसी अन्य उत्सर्पिणी के दूसरे ही समय में जन्मे, तब गिनती में लिया जावे।

इस तरह फिर भ्रमण करते-करते कभी किसी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में जन्मे, इस तरह क्रम से उत्सर्पिणी काल के दस

कोड़ाकोड़ी सागर के समयों में क्रम से जन्म लेकर तथा क्रम से मरण करके पूर्ण करे। इस तरह अवसर्पिणी काल के भी दस कोड़ाकोड़ी सागर के समयों को क्रम से जन्म व मरण करके पूर्ण करे। इन सबका समूहरूप जो काल है, वह काल संसार है। ऐसा काल संसार भी इस जीव ने पूर्व में अनन्त बार किया है।

भव संसार में भव जीव की कर्म द्वारा प्राप्त अशुद्ध पर्याय को कहते हैं। यह भव संसार चार प्रकार का है—नारक, देव, तिर्यंच, मनुष्य। देव व नरक गति में उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर की है व जघन्य आयु दश हजार वर्ष की है। नरक संसार का स्वरूप यह है कि कोई प्राणी नरक की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की बाँधकर नरक में नारकी हुआ फिर वह मर के कहीं अन्यत्र पैदा हुआ। जब कभी उतनी ही दस हजार वर्ष की आयु बाँधकर फिर नरक में पैदा हो तब वह भव गिना जावे। इस तरह दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार दस हजार वर्ष की आयुधारी नरकी होता रहे, फिर एक समय अधिक दस हजार वर्षधारी नारकी हो। फिर दो समय अधिक, इस तरह एक-एक समय अधिक की आयु क्रम से धारकर नारकी जन्मे, बीच में कम व अधिक धारकर जो जन्मे तो गणना में नहीं आवे।

इस तरह नरक की तैंतीस सागर की आयु नरक भव ले लेकर पूर्ण करे। तब एक नरक भव संसार का काल हो। इसी तरह देवगति में दस हजार की आयुधारी देव हो। फिर नरक के समान ही क्रम से जन्मे, उत्कृष्ट इकतीस सागर तक पूर्ण करे तब एक देव भव संसार हो। क्योंकि नौ ग्रैवेयिक से ऊपर सम्यग्दृष्टि ही जाते हैं। इसी तरह तिर्यंच गति में जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त के

उतनी बार इतनी आयुधारी तिर्यंच हो। फिर एक समय अधिक आयु पाकर तीन पल्य तक क्रम से आयु पावे। तब एक तिर्यंच भव परिवर्तन हो। इसी तरह मनुष्य भव संसार का स्वरूप है। चारों भव संसारों का समूहरूप काल भव संसार है। नित्य निगोद जीव को छोड़कर और सब संसारी जीवों ने इस भव संसार को भी अनन्त बार किया है।

भाव संसार को कहते हैं—जीव के परिणाम को भाव कहते हैं। वह भाव शुद्ध व अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है। संसारी जीव के ज्ञानावरणादि कर्म के विपाक से जो भाव होता है, वह अशुद्धभाव है। सर्व कर्मों के क्षय होने पर जीव का निश्चल जो शुद्ध परिणाम है, वह शुद्ध भाव है, जैसे अतीन्द्रिय सुख। कर्म रहित होने से अशुद्ध भावों में ही भावों का परिवर्तन होता है, शुद्ध भाव में नहीं होता है। क्योंकि वह स्वाभाविक है। जैसे गधे के सींग नहीं होते हैं।

कर्मों की स्थिति बन्ध के कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। इसी तरह कर्मों में अनुभाग को कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र योगस्थान होते हैं, उन सबके अविभाग प्रतिच्छेद की अपेक्षा अनन्त भेद होते हैं, उन भेदों के चार भेद होते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य। जघन्य योगस्थान से लेकर क्रम से उत्कृष्ट योगस्थान तक योगस्थान पूर्ण हो जावे, तब एक जघन्य अनुभागाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ गिनना चाहिए।

इस तरह फिर क्रम से योगस्थान हो जावे तब दूसरा अनुभाग

स्थान पूर्ण हुआ। इस तरह सर्व अनुभाग स्थान भी पूर्ण हो जावे तब जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ। इस तरह फिर योगस्थान को क्रम से पूर्ण करके अनुभाग स्थान क्रम से पूर्ण करे तब दूसरा स्थितिबन्धाध्यावसाय स्थान पूर्ण हो। इस तरह जघन्य स्थिति के कारण सर्व स्थितिबन्धध्यवसाय स्थान पूर्ण हो जावे तब जघन्य के एक समय अधिक स्थिति के लिये ऐसा ही क्रम हो। इस तरह हर एक कर्म के जघन्य से उत्कृष्ट स्थिति के लिये योगस्थान, अनुभागस्थल व स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान पूर्ण किये जावें। नित्य निगोद को छोड़कर भव संसार के समान भाव संसार भी अज्ञानी जीवों ने अनन्त बार किया है। इस तरह पाँच प्रकार संसार का स्वरूप समझकर मोक्ष-सुख के अर्थी को संसार रहित अपने आत्मा की आराधना मन, वचन, काय से करनी योग्य है।

एकत्व भावना

यह जीव द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा अनादि-अनन्त एक ही स्वयं अकेला है, पर्यायों की अपेक्षा अनन्तरूप होकर भी चैतन्यस्वरूप की अपेक्षा एक ही है। यह अज्ञानी जीव मोह कर्म से घिरा हुआ एकाकी ही इस लोक में ऊर्ध्व, मध्य, पाताल तीनों लोक में भ्रमण किया करता है। कभी नरक में जाता है, वहाँ भी अकेला दु:ख सहता है। कोई भी नरक में क्षणमात्र के लिये सहाई नहीं होता है। कभी पुण्य के उदय से स्वर्ग में जाता है, वहाँ भी अकेला ही स्वर्ग के सुख भोगता है। ऐसा ही तिर्यंचगति में सहायरहित जन्मता है। ऐसा ही मनुष्यगति में पैदा होता है व अकेला ही मरता है। पुत्र, पौत्र आदि, मित्र, बन्धु, सज्जन आदि

कोई भी किसी जीव के साथ नहीं आता है। त्रस स्थावर कायों की नानाप्रकार लाखों योनियों में यह प्राणी अकेला भ्रमण करता हुआ नाना क्लेशों को उठाता है, कोई कहीं क्षणमात्र भी दु:ख को बाँट नहीं सकता है। यह जीव अकेला ही तपरूपी खड्ग से कर्मशत्रुओं का नाश जब पुरुषार्थ द्वारा कर डालता है, तब अकेला ही केवलज्ञान-लक्ष्मी को पाकर निर्मल परमात्म पद का भागी होता है। इस तरह संसार व मोक्ष दोनों अवस्थाओं में जीव को अकेला ही समझकर सावधान होकर अनन्त सुखस्वरूप मोक्ष को ग्रहण करना चाहिए।

अन्यत्व भावना

इस जीव से जब नाशवन्त शरीर का ही लक्षण भिन्न है, तब शरीर के सम्बन्धी पुत्र आदि अपने कैसे हो सकते हैं ? इस जीव के स्वभाव से निश्चय करके पाँच इन्द्रियाँ व मन, वचन, काय सब भिन्न हैं। क्योंकि इसकी उत्पत्ति कर्म के उदय से होती है। जो ये रागादि विभाव चैतन्य सरीखे दिखते हैं, ये भी मोहनीय कर्म के उदय से होनेवाले भाव निश्चय से शुद्ध चैतन्यस्वरूप से भिन्न हैं। इसी तरह कर्मों के उदय से होनेवाले जीव समास, गुणस्थान, बन्धस्थान, योगस्थान सब इस आत्मा के स्वभाव से सर्वथा भिन्न हैं। बन्ध के कारण भूत कषाय के अध्यवसाय स्थान भी शुद्ध आत्मा के स्वरूप से भिन्न हैं। दोनों का लक्षण भिन्न-भिन्न है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, पुद्गल, जीव आदि अनन्त जाननेयोग्य परपदार्थ हैं। वे उस जीव के ज्ञान में झलकते हैं, तथापि उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इस अपने आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भिन्न हैं। मूर्तिक द्रव्य के

परमाणु कर्म नोकर्म रूप से व अन्यरूप से जहाँ जीव के प्रदेश हैं, वहाँ अनन्त हैं, तथापि ज्ञानस्वभावी आत्मा से सब अन्य हैं। वर्गरूप परमाणु व उनसे बनी हुई तेईस जाति की वर्गणाएँ वर्गणाओं के स्पर्धक, स्पर्धकों की गुण-हानियाँ ये सब अपनी आत्मा से भिन्न हैं।

ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म व उनके असंख्यात भेद व सर्व प्रकार के नोकर्म अपनी आत्मा के चैतन्यस्वरूप से भिन्न हैं। इसी तरह क्रम से होनेवाले मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक भाव भी निश्चय से इस जीव के कोई नहीं हैं। बहुत अधिक क्या कहें, एक चैतन्यमात्र आत्मा को छोड़कर सब ही पर हैं, कोई भी पर उपादेय नहीं है। जो कोई भेदविज्ञानी महात्मा सर्व अन्य को अन्य जानकर केवल अपने आत्मा की ही शरण में जाता है, वह शीघ्र ही अपने लिये साधने योग्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

अशुचित्व भावना

हमारा यह शरीर सर्वांग अशुचि है। इसकी उत्पत्ति शुक्रशोणित पूर्ण योनि से है। ये भीतर रुधिर, माँस, चर्बी से भरा हुआ मलमूत्र से पूर्ण है। चर्म से बँधे हुए हड्डी के पिंजर हैं।

हे भाई! इस शरीर को भयानक, नाशवन्त व सन्तापकारी समझो। यह शरीर ऐसा अपवित्र है कि संसार में जो-जो वस्तु स्वभाव से सुन्दर व पवित्र है, वह सब इस शरीर के संयोग से क्षणमात्र में अपवित्र हो जाती है। जैसे पानी में शैवाल है, जिससे पानी मैला दिखता है, परन्तु पानी शैवाल से भिन्न है। वैसे ही सर्व ही रागादि भाव मोहजनित हैं, ये स्वयं अपवित्र हैं। इसके संयोग से आत्मा मैला झलकता है। मिथ्या दर्शनरूपी मल से दूषित स्वर्ग के देवों को भी रागादि के होने के कारण पवित्रतापना नहीं है।

इसलिए परम पवित्र तो एक चैतन्यस्वभावी अमूर्तिक शुद्धात्मा है, जो अनन्त गुणमयी है व तीनों कालों में भी साक्षात् पवित्र है। अथवा दोषरहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र पवित्र है। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि सर्व प्रकार की अन्तरंग व बहिरंग अशुचि को छोड़कर एक शुचि पदार्थ को ग्रहण करना चाहिए। वह शुचि पदार्थ चैतन्य लक्षण अपना आत्मा है।

आस्रव भावना

आस्रव के दो भेद हैं—भाव आस्रव, द्रव्य आस्रव। कर्मों का आना द्रव्यास्रव है। कर्मों के आने का कारण रागादिक भाव भावास्रव है। भावास्रव भेद जिनेन्द्र भगवान ने मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय तथा योग को कहा है। इन्हीं भावों के द्वारा संसारी जीवों के उसी तरह कर्म पुद्गल आते हैं, जिस तरह जल के बीच में स्थित छिद्र रहित नाव में जल जाता है। तत्त्वार्थी का श्रद्धान न होना व और का और श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। आचार्यों ने कहा है—उसके अनेक भेद हैं। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार का है।

विशेष से उसके पाँच भेद है, अथवा असंख्यात लोक मात्र मिथ्यात्वभाव सम्बन्धी अध्यवसाय है। पाँच भेद—एकान्त, विपरीत, विनय, संशय व अज्ञान है। इनका स्वरूप परमागम से जानना चाहिए। बुद्धि के अगोचर सूक्ष्म भाव असंख्यात लोकप्रमाण हैं। जो आत्मा को कषन करे, मलिन करे, उनको कषाय कहते हैं। चारित्र मोहनीय के उदय से होनेवाले कषाय भाव पच्चीस प्रकार के हैं—चार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; चार अप्रत्याख्यान क्रोधादि; चार प्रत्याख्यान क्रोधादि; चार संज्वलन

क्रोधादि, सर्व मिलके षोड्श कषाय हैं। नव नोकषाय या ईषत् कषाय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नुपंसक वेद—ये सर्व पच्चीस कषाय महान अनर्थ करनेवाले भाव कर्मों के आस्रव के द्वार हैं। अविरति भाव बारह हैं, वे यद्यपि कषायों में गर्भित हैं तथापि भिन्न भी कहे गये हैं। पाँच इन्द्रिय व मन का वश न रखना। छह अविरति भाव ये हैं—पाँच प्रकार स्थावर एक त्रस इस तरह छह प्रकार के प्राणियों की हिंसा करना। छह ये हैं—

स्वानुभूति को धर्म कहते हैं। जिससे स्वानुभूति में असावधानी हो जावे, उसको प्रमाद कहते हैं। धर्मः स्वात्मानुभूत्याख्या प्रमादो नवधानता। यह कर्मास्रव का द्वार पन्द्रह प्रकार का है। चार विकथा स्त्री, भोजन, देश व राजा। उनके साथ चार कषाय व पाँच इन्द्रिय, निद्रा व स्नेह। इनके गुणा करने से प्रमाद के अस्सी भेद होते हैं। मन, वचन, काय की वर्गणाओं के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंद होना-हिलना, सो योग तीन प्रकार है। इनके भेद पन्द्रह हैं—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनयोग तथा सत्यादि वचन योग व सात प्रकार काय योग, औदारिक, मिश्र वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण। सब मिलके आस्रव भाव सत्तावन हैं। 5 मिथ्यात्व+12 अविरत + 25 कषाय + 15 योग = 57 इनका विशेष स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रन्थों से जानना योग्य है। कर्म स्वरूप से एक प्रकार है। द्रव्यकर्म व भावकर्म के भेद से दो प्रकार है। द्रव्यकर्म आठ प्रकार व एक सौ अड़तालीस प्रकार है या असंख्यात लोक प्रकार है। शक्ति की अपेक्षा उनके भेद उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य है। यह सब कथन परमागम से जानना योग्य है।

संवर भावना

निश्चय से सर्व ही आस्रव त्यागने योग्य हैं। आस्रव रहित एक अपना आत्मा शुद्धात्मानुभूतिरूप से ग्रहण करने योग्य है।

आचार्यों ने आस्रव के निरोध को संवर कहा ह। उसके दो भेद हैं—द्रव्यास्रव और भावास्रव। जितने अंश में सम्यग्दृष्टियों के कषायों का निग्रह है, उतने अंश में भाव संवर जानना योग्य है। कहा है—

येनांशेन कषायाणां निग्रहः स्यात्सुदृष्टिनाम्।
तेनांशेन प्रयुज्येत संवरो भावसंज्ञकः ॥113॥

भावार्थ—भाव संवर के विशेष भेद पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह भावना, बाईस परीषहजय व पाँच प्रकार चारित्र हैं। रागादि भावों के न होने पर जितने अंश कर्मों का आस्रव नहीं होता है, उतने अंश द्रव्यसंवर कहा जाता है। मोक्ष का साधन संवर से होता है, अतएव इसका सेवन सदा करना चाहिए। निश्चय से भाव संवर का अविनाभावी शुद्ध चैतन्य भाव का अनुभव है सो सदा कर्तव्य है।

निर्जरा भावना

निर्जरा भी दो प्रकार की है—भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। द्रव्य निर्जरा सम्यगदृष्टि से लेकर जिन पर्यन्त ग्यारह स्थानों के द्वारा असंख्यात गुणी भी कही गयी है। जिस आत्मा के शुद्ध भाव से पूर्वबद्ध कर्म शीघ्र अपने रस को सुखाकर झड़ जाते हैं, उस शुद्ध भाव को भाव निर्जरा कहते हैं। आत्मा के शुद्ध भाव के द्वारा तप के अतिशय से भी जो पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मों का पतन होना सो द्रव्य निर्जरा है।

जो कर्म अपनी स्थिति के पाक समय में रस देकर झड़ते हैं, वह सविपाक निर्जरा है। यह सर्व जीवों में हुआ करती है। यह सविपाक निर्जरा मिथ्यादृष्टियों के बन्धपूर्वक होती है। क्योंकि तब मोह का उदय होता है। इसलिए यह निर्जरा मोक्षसाधक नहीं है। सम्यग्दृष्टियों के सविपाक या अविपाक निर्जरा संवरपूर्वक होती है। यह मोक्ष की साधक है। ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टियों के कभी नहीं होती है। कहा है—

इयं मिथ्यादृशामेव यदा स्याद्बंधपूर्विका।
मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरःसरा॥130॥

सविपाका विपाका वा सा स्यात्संवरपूर्विका।
निर्जरा सुदृशामेव नापि मिथ्यादृशां कचित्॥131॥

मोक्ष की सिद्धि चाहनेवालों को उचित है कि निर्जरा का लक्षण जानकर उस निर्जरा के लिये सर्व प्रकार उद्यम करके शुद्धात्मा का आराधन करें।

लोकभावना

इस छह द्रव्यों से भरे लोक के तीन भाग हैं—नीचे वेत्रासन या मोढ़े के आकार है। मध्य में झालर के समान है, ऊपर मृदंग के समान है, अधोलोक में सात नरक हैं, जिनमें नारकी जीव पाप के उदय से छेदनानि के घोर दुःख सहन करते हैं। कोई जीव पुण्य के उदय से ऊर्ध्वलोक में स्वर्गों में पैदा होकर सागरों तक सुख सम्पदा को भोगते हैं। मध्यलोक में तिर्यंच व मनुष्य होकर पुण्य व पाप के उदय से कभी सुख कभी दुःख दोनों भोगते हैं। लोक के अग्रभाग के ऊपर मनुष्य लोक के ढाई द्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन चौड़ा सिद्धक्षेत्र है, जहाँ अनन्त सुख को

भोगते हुए सिद्ध परमात्मा बसते हैं। इस तरह तीन लोक का स्वरूप जानकर महाऋषिगण मोह को क्षयकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी मार्ग के द्वारा लोक के ऊपर जो सिद्धालय है, उसमें जाने का साधन करते हैं।

बोधिदुर्लभ भावना

एकाग्रसन होकर आत्मा का अनुभव करना सो बोधि है, इस बोधिक—लाभ जीवों को बहुत दुर्लभ है, यह विचारना बोधिदुर्लभ भावना है। अनादि नित्य निगोदरूप साधारण वनस्पतियों में अनन्तानन्त जीवों का नित्य स्थान है। अनन्त काल रहने पर भी कोई जब कभी वहाँ से निकलते हैं और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु प्रत्येक वनस्पति के किसी तरह जन्म प्राप्त करते हैं। नित्यनिगोद के सम्बन्ध में कहा है—

अनन्तानन्तजीवानां सद्मानादिवनस्पतौ।
निःसरंति ततः केचिद्गतेऽनंतेऽप्वनेहसि ॥140॥

भावार्थ—अशुभ कर्मों के कम होने पर अज्ञान अन्धकार के कुछ मिटने पर एकेन्द्रिय से निकलकर द्वीन्द्रियादि तिर्यंच होते हैं। उनमें पर्याप्तपना पाना बहुत कठिन है। प्रायः अपर्याप्त जीव बहुत होते हैं। जो एक श्वास (नाडी) के अठारहवें भाग आयु को पाकर मरते हैं। इनमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच होना बहुत कठिन है। असैनी पंचेन्द्रिय से सैनी पंचेन्द्रिय फिर मनुष्य होना बहुत दुर्लभ है! कदाचित् कोई मनुष्य भी हुआ तब आर्यखण्ड में जन्मना कठिन है। आर्यखण्ड में, उच्च कुल में जन्मना जहाँ जैनधर्म का समागम हो बहुत कठिन है। जैन कुल में जन्म लेकर दीर्घ आयु, शरीर की निरोग्यता पाना बहुत दुर्लभ है। ये सब

कठिनता से पानेवाली बातें पुण्योदय से मिल जावें तो भी विषयों में अन्धपना हो जाना सहज है। धर्म की ओर बुद्धि का होना कठिन है। धर्मबुद्धि भी कदाचित् प्राप्त हुई तो धर्म में प्रवीणपना होना दुर्लभ है। धर्म में निपुणता होने पर भी गुरु का उपदेश मिलना कठिन है। गुरु का उपदेश मिलने पर भी कषायों का निरोध अति दुर्लभ है। कषाय निरोध होने पर भी कर्मों का नाश करनेवाला संयम का लाभ कठिन है। संयम का लाभ होने पर भी काललब्धि के वश से शुद्ध चैतन्य का अनुभव होना अतिशय दुर्लभ है। क्षयोपशम विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, ये चार लब्धि तो कई बार पायीं, करणलब्धि का पाना कठिन है, जो अवश्य सम्यक्त्व को उत्पन्न कर देती है। तात्पर्य यह है कि परमार्थ की इच्छा करनेवालों को दुर्लभ स्वानुभूति के प्राप्त हो जाने पर फिर स्वानुभव के भवन में प्रमाद कभी नहीं करना चाहिए।

धर्म भावना

धर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं, तो भी एक अर्थ में लिया जावे तो यह कहा जाएगा कि जो जीव को नीच पद से निकाल कर उच्च पद में धारण करे वह धर्म है। निश्चय से धर्म आत्मवस्तु का स्वभाव है। वह धर्म साम्यभाव में स्थित चिदात्मा का शुद्ध चारित्र है। कहा है—

धर्मो वस्तुस्वभावः स्वात्कर्मनिर्मूलनक्षमः।
तच्चेव शुद्धचारित्रं साम्यभावचिदात्मनः ॥154॥

भावार्थ—व्यवहारनय से संयम का पालन धर्म है, जिनका मूल सर्व प्राणीमात्र पर दयाभाव है तथा शील सहित तप है। यह धर्म आश्रय के भेद से दो प्रकार का है—एक साधु का, दूसरा

गृहस्थ का। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के भेद से तीन प्रकार का है। दशलक्षण के भेद से दस प्रकार का है। वे दसलक्षण हैं—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य।

धर्म इसलोक व परलोक में खर्ची या पाथेय है, सदा सहायक है, नित्य उपकार करनेवाला है। यही प्राणियों का सच्चा पिता है, सच्ची माता है, सच्चा बन्धु है, सच्चा देव है। ऐसा मानकर बुद्धिमानों को सदा धर्मसाधन में बुद्धि रखनी चाहिए। कभी भी सन्तोषी होकर धर्म साधन में रोकना न चाहिए। प्राणियों के लिये धर्म बिना सर्व दिशाएँ शून्य हैं, ऐसा जानकर सावधान होना चाहिए।

इस तरह विद्युच्चर साधु व अन्य साधु बारह भावनाओं को चिन्तवन करते थे, जब उन पर घोर उपसर्ग हो रहा था। देह से भिन्न मेरा चैतन्यमयी आत्मा है जो केवल स्वानुभवगोचर है, इस भावना के बल से विद्युच्चर मुनि ने सर्व परिषहों को जीत लिया। उपसर्ग दूर होने पर मुनिराज ऐसे सोहने लगे जैसे मेघरहित तेजस्वी सूर्य सोहे! प्रात:काल होते-होते संन्यासविधि के अन्त में चार प्रकार आराधना आराध के मुनिराज का आत्मा शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धि में जाकर अहमिन्द्र उत्पन्न हुआ। वहाँ तैतीस सागर की बड़ी आयु है।

तब तक अहमिनद्र पद में वह जीव निरन्तर वचन अगोचर सुख भोगते हैं, जो अल्प पुण्यवालों को दुर्लभ है। वहाँ से च्युत होकर अन्तिम शरीर पाकर केवलज्ञान को प्राप्त कर वे परम गति को पहुँचेंगे। अनन्त सुखमयी अनन्त वीर्यमयी व केवलज्ञानमयी

शुद्धात्मारूपी सूर्य को बार-बार नमस्कार हो।

प्रभव आदि पाँच सौ मुनिश्वर भी संन्यास मरण करके परिणामों के अनुसार यथायोग्य स्वर्ग में जाकर देव हुए।

मुझ तुच्छ बुद्धि (राजमल्ल) ने इस जम्बूस्वामी जिनेन्द्र के उत्तम चरित्र को जैनागम के अनुसार कहा है। हे जगत वंद्य सरस्वती माता! यदि प्रमाद से स्वर, व्यंजन, संधि आदि में कोई भूल हो गयी हो तो क्षमा करना उचित है। शास्त्र-समुद्र अपार है, परम गम्भीर है, दुस्तर है। पृथ्वी में बड़ा भारी विद्वान हो, वह भी भूल कर सकता है।

जो कोई भव्य जीव इस भूमि पर श्री जम्बूस्वामी महाराज के समान ऐसा तप करेगा, जो तप पाँच इन्द्रियरूपी शत्रु के विशाल कामभावरूपी भयानक वन को जलाने को दावानल के समान है, वह परम सुख का भाजन होगा। ऐसा जानकर बुद्धिमानों को रात-दिन अपने ऊपर दयावान हो चित्त में तप की भावना करनी चाहिए।

जो कोई इस श्री जम्बूस्वामी मुनिराज के नाना चित्र विचित्र कथाओं से विभूषित व ज्ञानप्रद चरित्र को सुनेंगे, उनको बहुत पुण्य कर्म का बन्ध होगा, बुद्धि स्वयं बढ़ेगी। वे सर्व सांसारिक सुख की आशा को छोड़कर शीघ्र धर्मात्मा हो जायेंगे। यह चरित्र रोमांचक है। मुनिराजों को भी पढ़ना वा पढ़ाना चाहिए। सरस्वती देवी! यदि मैंने प्रमाद से व अज्ञान से कुछ कम या अधिक कहा हो तो तू मुझे क्षमा प्रदान करना। श्री वीर भगवान के पीछे अन्तिम केवली श्री जम्बूस्वामी जिनराज हुए हैं। हे भव्यजीवो! वे तुम सबको सदा मंगलकारी हों।

इस तरह श्री वीर भगवान के उपदेश के अनुसार स्याद्वाद व निर्दोष गद्य-पद्य विद्या में विशारद पण्डित राजमल्ल ने साधुपासा के पुत्र साधु टोड की प्रार्थना करने से यह श्री जम्बूस्वामी चरित्र रचा है।

टीका समाप्त की दाहोद जिला पंचमहल गुजरात में, दिगम्बर जैन धर्मशाला में भादों सुदी 14, रविवार, वीर सं० 2463 वि० सं० 1993, ना० 4 सितम्बर 1937 ई० को।

तत्त्वप्रेमी—ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जैन।

संस्कृत ग्रन्थकार की लिखित प्रशस्ति का भाव

विक्रम संवत् १९३२ चैत्र सुदी ८ पुनर्वसु नक्षत्र में जब अर्गलपुर या आगरे के किले में पातिसाह जलालुद्दीन अकबर शाह का राज्य था, तब काष्ठासंघ माथुरगच्छ में पुष्करगण में लोहाचार्य के अन्वयी भट्टारक श्री मलयकीर्तिदेव के पद पर भ० गुणभद्र और उनके पद पर श्री भानुकीर्ति तथा उनके पद पर भट्टारक श्री कुमारसेन हुए हैं, उनकी आम्नाय में अग्रवाल जाति गर्ग गोत्रधारी भटानियाकोल के निवासी श्रावक साधु श्री नन्दन उनके भ्राता साधु श्री आसू उसकी स्त्री सरो उसके तीन पुत्र हुए। बड़े पुत्र साहू रूपचन्द भार्या जिनमती, उनके पुत्र भी तीन, प्रथम पुत्र साधु जसरथ भार्या गावो व उसके भी पुत्र तीन, प्रथम पुत्र साह लोरचन्द भार्या प्यारी, इसके पुत्र साह गरीबदास भार्या हमीरदे। इसके पुत्र पाँच प्रथम साह हेमराज, भार्या..., साह जसरथ के दूसरे पुत्र सधु श्री छल्लू भार्या भवानी उसके पुत्र साधु चोलसाल भार्या वृवो, साह जसरथ के तीसरे पुत्र साधु चौहथ भार्या भागमती, उसके पुत्र दो, प्रथम साधु भावाल भार्या पारो, पुत्र लालचन्द!

साधु चौहथ के दूसरे पुत्र जारपादास भार्या...., साधु रूपचंद के दूसरा पुत्र साधु रायमल्ल भार्या चिरो, पुत्र साह नथमल भार्या चान्दनदे। साधु रूपचन्द के तृतीय पुत्र साधु श्री पासा भार्या घोषा, पुत्र साधु टोडर, भार्या कसूम्भी, पुत्र तीन प्रथम साधु श्री ऋषभदास, भार्या लालतृती दूसरे पुत्र मोहनदास भार्या मधुरी, तीसरे पुत्र चिरंजीवी रूपमांगद। इन सबके मध्य में परम श्रावक साधु श्री टोड़र ने जम्बूस्वामी चरित्र करवाया व कर्मक्षय के निमित्त लिखवाया। लिखा गंगादास ने।

हिन्दी टीकाकार की प्रशस्ति

मंगल श्री अरहंत हैं, मंगल सिद्ध महान।
आचारज उवझाय मुनि, मंगलमय सुखदान ॥1 ॥
युक्तपांत लखनौ नगर, अग्रवाल कुल जान।
मंगलसेन महागुणी, जिनधर्मी मतिमान ॥2 ॥
जिन सुत मक्खनलालजी, गृही धर्म में लीन।
तृतीय पुत्र सीतल यही, जैनागम रुचि कीन ॥3 ॥
विक्रम उन्निस पैतिसे, जन्मसु कार्तिक मास।
बत्तिस वय अनुमान में, घर से भयो उदास ॥4 ॥
श्रावक धर्म सम्हालते, विहरे भारत ग्राम।
उन्निससै तैरानके, दाहोदे विश्राम ॥5 ॥
शत घर जैन दिगम्बरी, दसा हूमड जाति।
त्रय मन्दिर उत्तम लसै, शिखरबन्द बहु भाँति ॥6 ॥
नसियां लसत सुहावनी, शाला वाला बाल।
संतोषचंद जीतमल, लुणानी चुन्नीलाल ॥7 ॥
सूरजमल औ राजमल, उच्छवलाल सुजान।
पन्नालाल चतुर्भुज, आदि धर्मिजन जान ॥8 ॥
सुख से वर्षाकाल में, ठहरा शाला धर्म।
ग्रन्थ कियो पूरण यहाँ, मंगलदायक पर्म ॥9 ॥
वीर चौबीस त्रेसठे, मादव चौदश शुक्ल।
रवि दिन सम्पूरण भयो, वन्दूँ श्री जिन शुक्ल ॥10 ॥
विद्वानों से प्रार्थना, टीका में हो भूल।
क्षमाभाव घर शोधियो, देखो संस्कृत मूल ॥11 ॥

वीरभक्त—ब्रह्मचारी सीतल